महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६२ **अंक** : २०
दयानन्दाब्दः १९६
विक्रम संवत्ः आश्विन कृष्ण २०७७
कलि संवत्ः ५१२१
सृष्टि संवत्ः १,९६,०८,५३,१२१
▪
सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार
▪
प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४
▪
मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१
▪
परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर
▪
वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

अक्टूबर द्वितीय २०२०

अनुक्रम

०१. सामवेदः ध्यान और गान का...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५८	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. ब्राह्मसमाज-प्रार्थना समाज के दोष	प्रो. रामसिंह एम.ए.	१५
०५. वैदिक मनीषी आचार्य डॉ. धर्मवीर..	डॉ. रामचन्द्र	२३
०६. भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ	आचार्य नरदेव शास्त्री	२४
०७. मोक्ष से पुनरावृत्ति पर जन्म-..	डॉ. सत्यप्रकाश गुप्त	२७
०८. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		२८
०९. संस्था-समाचार	ब्र. रोहित आर्य	२९
१०. संस्था की ओर से...		३१
११. 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र'		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

सामवेद: ध्यान और गान का विश्व का प्रथम शास्त्र विज्ञान की कसौटी पर

वैदिक शास्त्रीय मान्यता और इतिहास यह है कि सृष्टि को उत्पन्न करने के बाद, ईश्वर ने अपने मानवपुत्रों को ज्ञान-विज्ञान, धर्म-कर्त्तव्य, मर्यादा-नैतिकता, सदाचार-कदाचार, सत्य-असत्य, श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का ज्ञान देकर आर्य=श्रेष्ठ मननशील मानव बनाने के लिये चार ऋषियों की आत्मा में अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु ऋषि को यजुर्वेद, आदित्य ऋषि को सामवेद और अङ्गिरा ऋषि को अथर्ववेद के रूप में ज्ञान-विज्ञान दिया। परमेश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान-विज्ञान होने के कारण वेदों को **''अपौरुषेय= अर्थात् मानव-पुरुष द्वारा नहीं, अपितु परम-पुरुष परमेश्वर द्वारा प्रदत्त''** कहा गया है। इस मान्यता की स्थापना स्वयं वेदों (यजुर्वेद ३१/७, अथर्व. १०/७/२०) में चारों वेदों के नामोल्लेख पूर्वक गई है और उसकी पुष्टि वैदिक शास्त्रों (गोपथ ब्राह्मण पूर्व. २.१६) आदि में की है। विस्तार भय से उन प्रमाणों का उल्लेख लेख में नहीं किया जा रहा है। वेदों के वर्णनों के अनुसार वेद चार हैं। उनको मन्त्र-रचना की शैली के आधार पर ऋक्, यजु, साम तथा ज्ञान, कर्म, उपासना इन तीन प्रमुख प्रतिपाद्य विषयों की दृष्टि से **'त्रयी विद्या'** कहा जाता है।

सामवेद का काल- वैदिक साहित्य और इतिहास सामवेद को आदि सृष्टिकालीन मानता है। इस मान्यता का एक आधार यह भी है कि आज सभी भारतीय एवं पाश्चात्य लेखकों ने ऋग्वेद को विश्व के पुस्तकालय का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना हुआ है। सामवेद के १८७५ में से १५०० मन्त्र ऋग्वेद से ग्रहण किये हैं। अत: उन मन्त्रों के आधार पर यह भी प्राचीनतम वेद सिद्ध होता है। इस तथ्य का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण इस प्रकार करता है कि ऋग्वेद और सामवेद दोनों आदिकाल में एक साथ ही विद्यमान थे **(ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्ताम्**, ३/२३)। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद सहित अन्य वेदों में भी अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें सामवेद की चर्चा है, यथा-

- **उद्गातेव शकुन साम गायसि** (२/४३/१०२)
- **यो जागार तमु सामानि यन्ति** (५/४४/१४)
- **सामगामुक्थशासम्** (१०/१०/६)

इत्यादि प्रमाण चर्चित उक्त दोनों वेदों को प्राचीन और समकालीन सिद्ध करते हैं। विभिन्न कालों में वेदों की रचना कहने वालों का कथन और वेदकाल निर्धारण स्वयं वेदों और प्राचीनतम वैदिक साहित्य के विरुद्ध होने से स्वीकार्य नहीं माना जा सकता। प्राचीन ऋषियों-मुनियों का कथन सहज एवं स्वाभाविक है, उस समय पूर्वाग्रह या मताग्रह का कोई अवसर ही नहीं था, जैसा कि अर्वाचीन मत-मतान्तरवादी लेखकों का है।

सामवेद का अर्थ- 'साम' यह शब्द वेदों में प्रयुक्त और वैदिक संस्कृत का है। इसका निर्माण 'अन्त: कर्म=किसी वस्तु, भाव, क्रिया का अन्त करना' अर्थ वाली 'षो(सो)' धातु से मनिन् प्रत्यय लगकर हुआ है। विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त निर्वचनों के अनुसार इसके अर्थ हैं- 'जो निराकार परमेश्वर की उपासना और मन्त्रों की गेयता से अशान्ति, निराशा, दु:खों, विचारों, दुरितों आदि को दूर करके जीवन में सुख-शान्ति, सदाचारण, प्रसन्नता, उत्साह-आशा एवं आध्यात्मिक आनन्द को भर देता है, उसका नाम **'साम'** है। उसका ज्ञान-विज्ञान और प्राप्ति कराने वाला शास्त्र **'सामवेद'** है। ब्राह्मण और उपनिषदों में 'सा+अम' इन दो शब्दों के मेल से **'साम'** शब्द की रचना दिखायी है। वहाँ कहा है कि **सा** का अर्थ वाणी है और **अम** का अर्थ प्राण है। **साम** का एक अर्थ यह हुआ कि वह वाणी जो प्राणों को नयी शक्ति एवं जीवन प्रदान करती है। यही सामवेद का सामत्व है (शतपथ १४/४/१/२४; छान्दोग्य उपनिषद् १/३/७)। कई ब्राह्मण ग्रन्थों में सामवेद को प्राण और स्वर्ग स्वरूप वेद कहा है। उसका भी अभिप्राय यही है कि इस वेद के अध्यात्म ज्ञान, ध्यान एवं गायन से अध्येता के प्राणों को नयी शक्ति, नयी ऊर्जा और वर्तमान जीवन में सुख-शान्ति मिलती है (जैमिनीय ब्राह्मण ३/१/१८; शतपथ १४/४/३/१२)।

गान-विद्या का विश्व का प्रथम शास्त्र- प्राचीनतम वेद होने के कारण सामवेद भारत की ही नहीं, अपितु विश्व की गीत-संगीत विद्या का मूलस्रोत है। इसी आधार पर इसको संगीतवेद और इसके उपवेद को गान्धर्ववेद कहा गया है।

मीमांसा दर्शन में मुनि जैमिनि कहते हैं कि गीत अर्थात् गेय मन्त्रों का वेद होने के कारण इसका सामवेद नाम है (२/१/३३)। इसमें दो प्रकार के गेय छन्दों-गाथा और प्रगाथा का तथा सात गेय स्वरों का प्रयोग किया है। वे हैं- षड्ज, ऋषभ, गान्धर्व, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। वही स्वर आज भी संगीत शास्त्र में इनके **'सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि'** इन मूल संक्षिप्त नामों से प्रचलित एवं प्रसिद्ध हैं। सामवेद के गायकों का उद्‌गाता, सामग, सामगायक, छन्दोग नामों से उल्लेख मिलता है। सामवेद के मन्त्रों का गायन-शैली की दृष्टि से विभाजन तीन तकनीकी वर्गों में किया जाता है- आवि, लेश और छन्न। ऋचाओं का पदों में किया गया गान आवि साम कहाता है। स्तोभों के साथ गाया गया ऋचाओं का गाना लेश-साम एवं स्तोभों में गाया सम्पूर्ण मन्त्र का गाना छन्न कहाता है। मन्त्र के गान के मध्य मन्त्रपठित पदों से भिन्न जो ओहायि, हाउ, इडा आदि पदों का प्रयोग होता है, उसको स्तोभ कहते हैं।

सामवेद का महत्त्व- उपर्युक्त विशेषताओं के कारण जनसामान्य में सामवेद का महत्त्व प्राचीनकाल में ही अत्यधिक बढ़ गया था। कभी सामवेद की एक हजार शाखाएँ (=व्याख्या ग्रन्थ) प्रचलन में थीं। इनमें गायन के विविध रूप प्रदर्शित थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में सामवेद के महत्त्व पर प्रकाश डालने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण कथन मिलते हैं। गोपथ और शतपथ ब्राह्मण एक मत से कहते हैं कि सामवेद चारों वेदों का रस=सार है, निचोड़ है- **सर्वेषां वा एषः वेदानां रसो यत् साम** (शत. १२/८/३/२३; गोपथ पूर्व. ५/७)।

सभी यज्ञों, संस्कारों में सामगान अवश्य करने का विधान है। बिना सामगान के यज्ञ की पूर्णता नहीं मानी गयी है।

निरुक्त नामक वेदाङ्ग शास्त्र में आचार्य यास्क ने तीन निर्वचन करके सामवेद के प्रतिपाद्य और महत्त्व को स्पष्ट किया है-

सामन् सम्मितम् ऋचा, स्यतेः वा, ऋचासमं मेने इति नैदानाः

अर्थात् ऋग्वेद की ऋचाओं से संयुक्त है, अशान्ति, दुःखनाशक है। ऋग्वेद की ऋचाओं के समान इसके मन्त्रों की मान्यता है, यह निदान नामक शास्त्रीय अर्थपरम्परा के आचार्यों का अर्थ है (७/१२)। कहीं-कहीं **सामन्** का सीधा अर्थ प्रसन्नता ही किया है। यह सत्य ही है, और आधुनिक विज्ञान ने इसको प्रमाणित भी कर दिया है कि संगीत का न केवल मानव पर, अपितु पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों तक पर सकारात्मक प्रभाव होता है। इससे उनकी वृद्धि तीव्र गति से होती है और जीवन में प्रसन्नता की अनुभूति होती है। संगीत से भावाभिव्यक्ति की संप्रेषणीयता एवं ग्राह्यता बढ़ जाती है।

सामवेद के पठन और जीवन पर उसके प्रभाव की प्रशंसा करते हुए शतपथ ब्राह्मण कहता है कि यह वेद मनुष्य के बुरे विचाररूपी राक्षसों का विनाश करता है (**साम हि नाष्ट्राणां रक्षसाम् अपहन्ता,** ४/४/५/६)। जो श्रेष्ठाचरण का पालन करता है, मानो वह सामवेद हो जाता है और जो-जो सत्याचरण है वह सामवेद है (**यो वै श्रेष्ठतामश्नुते सःसामन् भवति,** ऐतरेय ब्राह्मण ३/२३; **यत् सत् तत् साम**,जैमिनीय ब्राह्मण १/५३/२)। व्यवहार में इतनी प्रशंसा किसी भी वेद की नहीं मिलती। गीता में महर्षि व्यास ने श्री कृष्ण के मुख से यह कहलवाकर कि **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'** (१०/२२) सामवेद को सबसे महत्त्वशाली वेद घोषित कराके उसके गौरव को पर्याप्त बढ़ा दिया। ये सब कथन सत्य ही हैं, क्योंकि संगीतमय वैदिक अध्यात्म-मार्ग का अनुसरण करने वाला मनुष्य अपने जीवन में उक्त उपलब्धियों को प्राप्त कर ही लेता है।

सामवेद का अध्यात्म विज्ञान- सामवेद अध्यात्म विद्या का वेद है। अतः इसका विषय है ब्रह्माण्ड के रचयिता, धारणकर्ता और प्रलयकर्ता वेदोक्त निराकार परमेश्वर की उपासना। उपासना योग का ही एक अंग है और ईश्वरीय ज्ञान का पर्याय है। वैदिक उपासना के ज्ञान-विज्ञान, उपदेश-सन्देश, महत्त्व और प्रेरणा का वर्णन चारों वेदों में है, किन्तु ईश्वरीय नामों, मन्त्रार्थ और मन्त्रों की गेयता के माध्यम से योग, एकाग्र ध्यान या जपोपासना के मुख्य विषय का विश्व में सर्वप्रथम प्रस्तुतकर्ता शास्त्र सामवेद ही है। इसके महत्त्व,पद्धति और विज्ञान को हमारे ऋषियों-मुनियों ने आदिसृष्टि काल में ही समझ लिया था और उसके लाभों को अपने जीवन में आचरण से अर्जित किया था।

आजकल योग, ध्यान, उपासना के नाम पर बहुत-सी दुकानें खुल गयी हैं। हर कोई इनके नाम पर लोगों को आकर्षित करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है। आँखें बंद करके कुछ भी रटना या गाना योग, ध्यान या उपासना नहीं होता। बाह्य चित्तवृत्तियों को रोककर आत्मस्थ होना योग या ध्यान का प्रारम्भ है। उसमें ज्ञेय आत्मा-परमात्मा की संगति

उपासना करना इनका वैदिक, योगशास्त्रीय और वास्तविक लाभप्रद रूप है। सामवेदोक्त या अन्य वेदोक्त मन्त्रों से निराकार ईश्वर की उपासना करने से सुख-शान्ति की प्राप्ति, दु:खों-दुरितों से निवृत्ति और मोक्ष प्राप्ति कैसे होती है, महर्षि दयानन्द द्वारा अपने ग्रन्थों में किया गया इस विषयक विवेचन पर्याप्त उपयोगी है। वे स्वयं एक योगी थे, दूसरे शब्दों में योगवैज्ञानिक थे। उन्होंने वैदिक उपासना को तीन प्रभाग करके समझाया है। वे हैं-**स्तुति, प्रार्थना, उपासना।** ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव का ज्ञान करना और उसका श्रवण-कीर्तन करना **स्तुति** कहाती है। ईश्वर के साथ प्रीति होना उसका फल है। किसी उत्तम कार्य या ईश्वर-प्राप्ति की सिद्धि के लिये पूर्ण पुरुषार्थ करने के उपरान्त परमेश्वर से सहाय की याचना करना, **प्रार्थना** कहाती है इसका फल है- ईश्वर के प्रति अत्यन्त प्रीति होना और उसके गुणों के ग्रहण में पुरुषार्थ करना, अभिमान का नाश, आत्मा में विनम्रता आदि। जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव हैं वैसे अपने भी करना, अपनी आत्मा में ईश्वर की विद्यमानता की अनुभूति रखना, उसके स्वरूप में आत्मा को मग्न करना **उपासना** कही जाती है। जैसेकि परमात्मा पवित्र, न्यायकारी, दयालु, अभय, निर्विकार आदि है, वैसे ही उसके यथायोग्य गुणों को अपने जीवन में धारण करना। इसका फल ज्ञान की उन्नति, गुणों का ग्रहण और ईश्वर-साक्षात्कार होना है। फिर उसका फल आनन्द और मोक्षप्राप्ति है। महर्षि दयानन्द अपने अनुभव के आधार पर लिखते हैं कि दृढ़ ईश्वर-विश्वास और उपासना से मनुष्य में इतना आत्मबल आ जाता है कि वह जीवन में आये पहाड़ के समान दु:खों से भी नहीं घबराता। वे स्वयं दृढ़ ईश्वर-विश्वासी और योगाभ्यासी थे। पाखण्डी एवं अन्धविश्वासी समाज के विरुद्ध अकेले डटे रहे। अनेक बार शारीरिक प्रहार होने तथा विष दिये जाने के बाद भी कभी नहीं घबराये। इसी प्रकार सामवेद के मन्त्रों से उपासना करके मनुष्य इस जीवन में आत्मबल, सुख-शान्ति प्राप्त करते हुए आने वाले जन्मों में मोक्ष सुख तक प्राप्त कर लेता है। यह एक पुरातन विज्ञान है।

आधुनिक विज्ञान द्वारा पुष्टि- अपने परीक्षणों के बाद आधुनिक चिकित्सा विज्ञान एवं उसके द्वारा किये अनुसन्धानों ने भी एकाग्र ध्यान या उपासना के महत्त्व को एक विज्ञान के रूप में स्वीकार कर लिया है। ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मैडिकल साइंसेज दिल्ली की सन् २०१८ में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। शोधकर्ता डॉ. के.के. अग्रवाल ने अपने एक साक्षात्कार में बताया था कि आइ.आइ.टी हैदराबाद के एक वैज्ञानिक प्रोफेसर के साथ मिलकर १९९८ से यह शोध २५ से ३० वर्ष के डॉक्टरों के दो दलों पर किया। डॉक्टरों के एक दल ने तीन महीने तक एकाग्र ध्यान के साथ प्रतिदिन १०८ बार गायत्री मन्त्र का जप किया। परिणाम यह सामने आया कि उपासना ध्यान के जो लाभ या परिणाम भारतीय साहित्य में बताये गये हैं, वे सब सत्य हैं। इससे ध्यान करने वालों में प्रसन्नता, मस्तिष्क का विकास, सकारात्मक विचारों में वृद्धि; अनिद्रा, अवसाद, निराशा, नकारात्मक विचारों पर नियन्त्रण आदि लाभ देखे गये। पता लगा कि ध्यान से शरीर में गाबा नामक कैमिकल अधिक उत्पन्न हुआ जो कि प्रसन्नता को बढ़ाता है। बैंगलोर आदि के साइन्स इंस्टीट्यूट में भी ठीक इसी प्रकार के परीक्षण हुए। उनके भी वही निष्कर्ष सामने आये। यहाँ वर्णित सभी परीक्षणों के विवरण साइन्स पत्रिकाओं और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर उपलब्ध हैं। पाठकों को याद दिला दें कि वैदिकशास्त्रों में जप-उपासना, ध्यान की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व गायत्री मन्त्र को प्राप्त हुआ है। उसका एक कारण यह है कि इसमें समस्त विकारों के निवारणकर्तास्वरूप परमात्मा से जीवन में समस्त सदाचरणों की ओर प्रेरित करने वाली बुद्धि को प्राप्त कराने के लिये उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना की गई है। गायत्री मन्त्र का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद (ऋ. ३.६२.१०, यजु. ३.३५, २२.९, ३०.२, ३६.३, साम. १४६२) इन तीन वेदों के साथ-साथ अनेक वैदिक शास्त्रों में मिलता है।

विशेष उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि विगत 20-25 वर्ष पूर्व जब ध्यान-उपासना की वैदिक विद्या और उसके प्रभाव की चर्चा पाश्चात्य देशों में पहुँची तो वहाँ इसके परीक्षणों की बाढ़-सी आ गई। चिकित्सा-वैज्ञानिक, तन्त्रिका-वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक क्षेत्रों के वैज्ञानिक इनके परीक्षण में जुट गये और परिणाम में सभी को इसके चमत्कारिक लाभ मिले। उसके बाद तो उन्होंने इसको अपनी चिकित्सा में ही शामिल कर लिया। पाश्चात्य देशों में अब यह विषय चिकित्सा विज्ञान का आवश्यक अंग बन चुका है। 'सॉ अन अस्पताल, पेरिस' के डॉक्टर क्रिस्टॉफ आंद्रे ने सबसे पहले ध्यान को अपने रोग-उपचार का माध्यम बनाया। इस पर पुस्तक लिखी तथा देश-विदेश के चैनलों पर उसके लाभों के आंकड़े प्रस्तुत

कर बताया कि ध्यान से किस प्रकार रोगों पर नियन्त्रण करने में सहायता मिलती है।

इसी प्रकार हार्वर्ड यूनिवर्सिटी (अमेरिका) की वैज्ञानिक सेरा लेजर ने २०११ में और २०१५ में एक अन्य शोध में यही परिणाम देखे। अपितु उक्त परिणामों से आगे यह भी निष्कर्ष निकला कि बुढ़ापा आने की प्रक्रिया ध्यान से धीमी हो जाती है, रक्त में सीआरपी लेवल कम हो जाता है जो हृदयाघात के लिए उत्तरदायी होता है। मस्तिष्क के आकार में सकारात्मक परिवर्तन होता है और मनुष्य स्वयं को नियंत्रित करने में किसी रेडियो के बटन के समान सक्षम हो जाता है। विचारों, आदतों, क्रोध आदि विकारों पर काबू पा सकता है। इतना ही नहीं, जेनेटिक लेवल पर भी परिवर्तन होते हैं। उत्तेजक जीन्स को दबाया जा सकता है, जैनेटिक गतिविधियों पर नियन्त्रण हो सकता है। परीक्षण के यही निष्कर्ष पेंसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी, अमेरिका द्वारा 'काग्निटिव, इफैक्ट्स एंड बिहेवियरल न्यूरोसाइंस' पत्रिका और 'मैक्स प्लांक इंस्टिट्यूट फॉर इम्यूनबायोलॉजी एंड एपिजेनेटिक्स, जर्मनी' द्वारा 'साइको न्यूरो एण्डो क्राइनोलॉजी' नामक पत्रिका में प्रकाशित हैं। आणविक जीव विज्ञान (एपिजेनेटिक्स)के विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक ब्रूस लिप्टन ने अपने २००८ के शोध में और हाइडलबर्ग (जर्मनी)में शोधरत 'एसोसिएशन फॉर बायोलॉजिकल रेसिस्टेंस टू कैंसर' के निदेशक यार्गी इर्मी ने अपने चिकित्सकीय शोध में बताया है कि कैंसर का एक मुख्य कारण भावात्मक उत्तेजना होता है, जिसे ध्यान के द्वारा कम करके कैंसर से बचाव किया जा सकता है अर्थात् कैंसर के जीन्स को दबाया जा सकता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ध्यान या उपासना के मस्तिष्क पर होने वाले प्रभावों का भी विशेष रूप से अध्ययन किया है। अमेरिका के विस्कांसिन विश्वविद्यालय के तंत्रिका विज्ञान के जगत्प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर रिचर्ड डेविसन ने अपने शोध में पाया कि ध्यानावस्था में मस्तिष्क की तन्त्रिका में एक गतिविधि शुरू होती है। उसे न्यूरोप्लास्टिसिटी कहते हैं। उसमें स्वयं को बदल लेने की क्षमता होती है। हर समय बाहरी प्रभावों से ग्रस्त रहने वाला मस्तिष्क ध्यानावस्था में स्वयं को उससे बचाता है और व्यवस्थित करता है। बोस्टन (अमेरिका) में ही शोधरत फ्रांस की तंत्रिकाविज्ञानी डॉ. गायेल डेवार्ट का कहना है कि मस्तिष्क के मध्यभाग का अमिग्डला नामक अंग व्यक्ति की मनोदशा को तय करता है और वही भय का भी केन्द्र है। भय की पीड़ा के समय इस मध्यभाग का आकार बढ़ जाता है। आठ सप्ताह के ध्यान-अभ्यास के बाद उन्होंने देखा कि वह आकार घट जाता है तथा व्यक्ति भय, अवसाद (डिप्रेशन) की स्थिति से बाहर निकल जाता है। मस्तिष्क की बनावट को ध्यान के अभ्यास से अपने अनुकूल बनाये रखा जा सकता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य वैज्ञानिकों के अनेक परीक्षणों ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि प्राचीन समय में ऋषि, मुनि, महर्षि, आचार्यजनों के लिए सामवेद और गायत्री आदि मन्त्रों का गान एवं एकाग्र जप-उपासना करना बौद्धिक विकास, रोग-बचाव, उन्नत मानवीय आचरण और आत्मोत्थान का परीक्षित एवं अनुभूत विज्ञान था। यों कहिये कि ध्यानयोग अथवा उपासना अपने लिये, अपने द्वारा निर्मित और अपने द्वारा प्रयुक्त एक अभौतिक औषध है। आधुनिक विज्ञान द्वारा उस विषयक वैदिक शोधों की पुष्टि होना वैदिक विज्ञान की सच्चाई की विजय है।

सामवेद की संरचना एवं शाखाएं- सामवेद पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक दो भागों में व्यवस्थित है। पूर्वार्चिक में चार काण्ड हैं- आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान, आरण्य। इन चार काण्डों में ६४० मन्त्र हैं। इसी में महाम्न्यार्चिक खण्ड है जिसमें १० मन्त्र हैं। इस प्रकार इस भाग में कुल ६५० मन्त्र हैं। उत्तरार्चिक में ९ प्रपाठक और २१ अध्याय है। इस भाग में कुल १२२५ मन्त्र है। दोनों भागों के मिलाकर सामवेद में कुल १८७५ मन्त्र हैं। इनमें ऋग्वेद के लगभग १५०० मन्त्र ग्रहण किये हुए हैं। यह चारों वेदों में सबसे कम मन्त्र संख्या वाला वेद है।

सामवेद की व्यापक लोकप्रियता का अन्य प्रमाण उसकी शाखाओं की सर्वाधिक संख्या होना है। व्याकरण महाभाष्य में आचार्य पतञ्जलि बताते हैं-'**सहस्रवर्त्मा सामवेदः**' अर्थात् सामवेद की एक हजार शाखाएँ (व्याख्या या गेय पद्धति के ग्रन्थ) थीं। किन्तु उनमें से इस समय राणायनीय, कौथुमी और जैमिनीय केवल तीन उपलब्ध रह गई हैं। ९९७ लुप्त या विनष्ट हो चुकी हैं। इसी प्रकार अन्य संस्कृत साहित्य भी लुप्त हुआ या आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट किया गया या लूटा गया है। इन आंकड़ों से भारत में साहित्यिक उन्नति का अनुमान लगाया जा सकता है और इस बात का भी कि हम हजारों वर्षों से कैसे-कैसे लुटते आ रहे हैं!!!

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रवचनमाला-७२

मृत्यु सूक्त-५८

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सुतिष्ठतु सहस्त्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र।।

वेद ज्ञान के इस प्रसंग में हम ऋग्वेद के दशम मण्डल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं और हमारी चर्चा का केन्द्र १२वाँ मन्त्र है। इसका ऋषि यामायनः और देवता पितृमेध है। इसमें हमने मृत्यु से सम्बन्धित एक व्यक्ति का रूप, एक परिवार का रूप, एक देश का रूप और मृत्यु से जुड़े हुए जन्म का रूप देखा। पिछले मन्त्रों में हमने चर्चा की थी कि इस संसार में जो प्रथम उत्पत्ति हुई वह कैसे हुई, उसी चर्चा को इस मन्त्र में आगे बढ़ाते हुए एक और प्रश्न का समाधान किया गया है। नियम यह रहता है कि आज हम जैसा देख रहे हैं कि एक प्राणी से दूसरे प्राणी की उत्पत्ति होती है और हमें लगता कि इससे पहले, उससे भी पहले ऐसा ही होता है। मूल प्रश्न अन्त में जाकर क्या खड़ा होता है कि यह परम्परा कहाँ तक जायेगी। यदि कहीं नहीं जायेगी तो यह कभी समाप्त ही नहीं होगी, इसका उत्तर ही नहीं मिल पायेगा। इसे दर्शन की भाषा में अनवस्था दोष कहते हैं। उसे किसने पढ़ाया, फिर उसे किसने पढ़ाया आदि। यह समस्या जैसे उत्पन्न होने में आती है, वैसे ही ज्ञान में भी आती है और दोनों ही समस्याओं का एक ही समाधान है। यदि हम यह मान लें कि किसी दिन इस संसार का आरम्भ हुआ था तो जितनी भी अनवस्था दोष वाली परिस्थितियाँ है उनका निराकरण अपने आप हो जायेगा, चाहे वह ज्ञान की समस्या हो, चाहे वह जन्म की समस्या हो। यहाँ इस समस्या का समाधान है।

जो-जो वस्तु किसी निमित्त से होती है, कारण से होती है, उसका प्रारम्भ अवश्य होना चाहिये। वह निमित्त कब आया, कैसे आया, कैसे मिला? क्योंकि वह निमित्त कौन हो सकता है? एक वस्तु है, जो प्रारम्भ हुई है। संसार में कोई चीज अपने आप प्रारम्भ नहीं होती, उसका कोई प्रारम्भ करनेवाला होता है। उसके प्रारम्भ करने का प्रयोजन होता है। यह सब यदि यदि हमारे चिन्तन में घटता है तो हमारा चिन्तन, हमारा सिद्धान्त ठीक है। लेकिन यदि उसमें कोई विषमता आती है, कोई क्रम टूटता है, कोई विरोध उठता है तो फिर हमें विचार करना पड़ेगा।

आजकल के लोग भी यह मानते हैं कि यह सारा संसार एक जीवाणु से चला है जिसे आप Amoeba (अमीबा) कहते हैं या एककोषीय जीव कहते हैं और उसकी यह विशेषता आप मानते हैं कि उस एककोषीय जीव के जितने खण्ड होंगे उतने ही जीव बन जायेंगे, और उसी का आगे विकास होकर विभिन्न प्रकार की सृष्टि बनी है। यही हम विज्ञान में पढ़ते हैं। लेकिन मूल समस्या का समाधान नहीं मिलता। यदि यह कहते हैं कि एक जीव से विकसित होकर दूसरा जीव बना है, उदाहरण के लिये आप यह कहते हैं कि बन्दर मनुष्य का पहला रूप है। यह बात तो समझ में आती है कि किस-किस स्तर पर कौन-कौन से जीव हैं, लेकिन उस स्तर से दूसरा स्तर बना है, यह बात तार्किक नहीं है। इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते कि मनुष्य से मिलती-जुलती प्रजाति गोरिल्ला की हो सकती है, मनुष्य से मिलती-जुलती प्रजाति बन्दर की हो सकती है और उससे नीचे भी कोई मनुष्य से आप समानता बता सकते हैं लेकिन इस बात से यह कहना कि बन्दर से मनुष्य बना है तार्किक नहीं है।

क्यों नहीं है? बन्दर और मनुष्य में समानता है, यह

ठीक है लेकिन ऐसा क्यों नहीं है कि बन्दर और मनुष्य दोनों प्रजातियाँ हैं? जब कोई वस्तु सबसे निम्न स्तर की होगी और एक सबसे उच्च स्तर की होगी तो बीच के स्तर भी तो अपने आप ही बनेंगे। किसी में गुण कम हैं तो किसी में गुण अधिक भी होंगे। लेकिन जैसे एक ही साँचा हर तरह की स्थिति को पैदा नहीं कर सकता, वैसे ही हर प्रजाति एक ही साँचे से बनी है, एक ही साँचे से विकसित है, यह बुद्धिगम्य नहीं है। यह दिखाने में कोई कठिनाई नहीं है कि मनुष्य से मिलती-जुलती प्रजातियाँ कहाँ से प्रारम्भ होती हैं और कहाँ तक आती हैं। ये बातें तो आज भी हैं, उसी तरह से हैं। जो सबसे नीचे का स्तर है, आज भी विद्यमान है और सबसे ऊँचा जो स्तर है वह भी विद्यमान है। इसमें दूसरी महत्त्वपूर्ण तथ्य की बात यह है कि संसार में जो क्रम है, वह एक ही नहीं है, केवल बढ़ना ही बढ़ना नहीं है। बढ़ना कारण से है, कारण के हटने पर घटना भी अपने आप हो जाता है। आप अच्छे भोजन, अच्छे काम, अच्छी व्यवस्था से अपने को विकसित कर लेते हैं और यदि वे साधन न मिलें तो आप घट भी जाते हैं।

कहते हैं कि यहाँ सब बढ़ रहा है, लेकिन भारत में कद घट रहा है। पशुओं का जो वैशिष्ट्य था, वह कम हो रहा है। पहले के साँड, पहले की गायें, पहले के जानवर हम देखते हैं कि वे बड़े विशालकाय हैं, लेकिन वे आज घट करके कम हो गए हैं। तो यह कहना कि ये विकसित होकर ऐसे बने हैं, इसमें तार्किकता नहीं दिखाई देती। हम चित्र देखकर यह कहते हैं कि इसका यह पहला रूप था, इसलिये यह इससे बना है। यह तर्क वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि यदि यह वैज्ञानिक होता तो आज भी उस जाति से दूसरे बनते होते और फिर ऐसा होता कि जैसे कोई कच्चा माल बनता है, उससे एक चीज बनती है, फिर उससे दूसरी बनती है, उससे तीसरी बनती है, उससे चौथी बनती है और यह समझ में आता है कि इसका मूल यह है। लेकिन मनुष्य के साथ आप ऐसा नहीं कह सकते। मनुष्य का मूल आज भी वही होता, यदि मनुष्य मूल से बना होता। हम एक बात याद रखेंगे कि मनुष्य, मनुष्य के रूप में यदि पैदा नहीं होगा तो मनुष्य की प्रजाति नहीं बन सकती। जो भी प्रजातियाँ हैं, वे अपने रूप में वैसे ही उत्पन्न हुई हैं। समानता के कारण बन्दरों को मनुष्यों का पूर्वज, मनुष्यों को बन्दरों के पश्चात् आने वाला नहीं कहा जा सकता इसलिये मनुष्य भी स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुआ है। प्रारम्भ में मनुष्य के रूप में ही उत्पन्न हुआ है और यदि वह मनुष्य के रूप में नहीं होता तो उसका पुराने से जो सम्बन्ध है, वह आज भी घटित होना चाहिये। उसकी कुछ भाषा उससे मिलनी चाहिये, उसकी कुछ संवेदनायें उससे मिलनी चाहियें, उसका उसके प्रति प्रेम होना चाहिये। मनुष्य अपनी सन्तान के साथ प्रेम करता है, लेकिन जानवरों को तो वह वैसा प्रेम नहीं करता, यह मानकर कि वे हमारे पूर्वज हैं और न जानवर ऐसा समझते हैं कि ये हमारी सन्तान हैं और मैं इनसे प्रेम करूँ। इसलिए यह कहना कि बन्दर मनुष्य का पूर्वज है, यह इसके बाद का है, बुद्धिगम्य नहीं है। क्योंकि बनानेवाले ने अलग-अलग बनाया है इसलिये हर बनाने की स्थिति दूसरे से भिन्न है, कुछ कम, कुछ अधिक, आप उनको क्रम में रखकर देख सकते हैं। इसलिए इसका प्रारम्भ जब एक रूप में हो सकता है तो अनेक रूप में क्यों नहीं हो सकता? कोई एक चीज जिस विधि से पैदा हो रही है उस विधि से बहुत सारी चीजें क्यों नहीं पैदा हो सकतीं? इस दृष्टि से जैसे सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं, वैसे मनुष्य भी उत्पन्न हुआ है।

इस मन्त्र में विशेष बात कही गई है- **उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सुतिष्ठतु सहस्त्रं मित उप हि श्रयन्ताम्**- कि जब अमीबा पैदा किया होगा, तो एक किया होगा? एककोषीय जीव से अगला प्राणी-समूह क्या एक ही बार में पैदा हुआ होगा, और एक से ही इतना विकसित हुआ होगा? ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि एककोषीय जीव भी बहुत संख्या में हों और यदि एककोषीय जीव बहुत संख्या में हो सकते हैं तो कोई भी प्रजाति बहुत संख्या में क्यों नहीं हो सकती। इसलिए इस मन्त्र में एक समाधान है कि यह जो मनुष्य है इनका प्रारम्भ क्या एक जोड़े के रूप में हुआ था? क्योंकि जो सृष्टि-उत्पत्ति है, चाहे वह कुरान में है, चाहे बाइबिल में है, चाहे पुराण में है, चाहे वेद में है, प्रारम्भ तो सबमें है। कुरान कहता है, बाइबिल कहती है कि उसने एक मनुष्य से या एक पुरुष से स्त्री को पैदा किया। उसकी एक हड्डी निकाल दी और उसे स्त्री बना दिया। तो यह एक से

दो बनने की जो पद्धति है, यह दो बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह इसलिए पड़ी कि अगला क्रम चलता रहे।

लेकिन जब बनाना ही था तो अगला प्रश्न यह है कि उसे एक बनाकर दो करने की क्या जरूरत है, वह दो ही क्यों न उत्पन्न करे। स्त्री-पुरुष के रूप में ही क्यों न उत्पन्न करे। आज भी हम किसी बालक के पैदा होने पर उसमें से बालिका नहीं बनाते या बालिका के पैदा होने पर उसमें से आधे को बालक नहीं बनाते। दोनों की उत्पत्ति और दोनों का विकास अलग-अलग होता है। पहले ही स्तर से कोई बालक के रूप में विकसित होता है, कोई बालिका के रूप में विकसित होता है, कारण के अनुसार होता है। इसलिए यह जो कल्पना करना है कि एक में से दो हो गए-यह भी अनुचित है। एक में से दो तो आज भी होते हैं, एक माता-पिता की सन्तान २, ४, ६ कितने भी होते हैं, लेकिन वे मूल रूप से दो ही पैदा होते हैं, एक पैदा होकर दो नहीं बनते।

इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो इस संसार में जो लोग पैदा हुए हैं वे आज जिस तरह से पैदा हुए हैं, पहला जो उत्पत्ति स्थान था वह ऐसा नहीं था। अब इसमें समस्या है। लोग पूछते हैं- पैदा हुए, तो कैसे पैदा हुए? पृथ्वी से पैदा हुए और पृथ्वी से पैदा हुए तो हमारी एक समस्या है कि क्या वे बालक पैदा हुए, क्या वे युवा पैदा हुए, क्या वे बूढ़े पैदा हुए? तो अब प्रश्न यह है कि किस प्रकार पैदा होना ज्यादा उपयुक्त है? वर्तमान में छोटे बालक पैदा होते हैं, क्यों? क्योंकि माता और पिता की स्थिति छोटी है। चाहे वह हाथी ही क्यों न हो, माँ का गर्भ छोटा है, पिता का प्रारम्भिक बीज छोटा है, उसके विकसित होने के लिए बड़ा स्थान नहीं है, इसलिए उसका जन्म छोटे रूप से है। लेकिन जब किसी बड़े स्थान पर जन्म होगा तो फिर छोटा क्यों पैदा किया जायेगा? जो जितना बड़ा पैदा हो सकता है, उतना होगा। आप जब किसी कारखाने में जाते हैं तो आप जितना बड़ा साँचा बनाते हैं, चीज उतनी बड़ी बनती है। आप छोटा साँचा बनाते हैं तो छोटी चीज बनती है, बड़ा साँचा बनाते हैं तो बड़ी चीज बनती है, आप बहुत बड़ा बनाते हैं तो बहुत बड़ी बनती है। आप यह नहीं कह सकते उस छोटे साँचे से बड़ी चीज का विकास हुआ। आज मनुष्य के छोटे होने का कारण है कि मनुष्य के रूप में जो चीज हमारे सामने है, मनुष्य जितना है उसके अनुपात से ही उसकी अगली पीढ़ी पैदा होगी। वह स्वयं जितने अनुपात में है, उतने अनुपात में वह छोटा ही पैदा हो सकता है बड़ा नहीं। लेकिन जब हम पृथ्वी से उत्पन्न होने की बात करते हैं, तो जितना चाहिये, जितना अपेक्षित है उतना बड़ा हो सकता है। जब हम कोई फसल उगाते हैं, तो फसल का पृथिवी से अनुपात नहीं होता। पृथिवी में कोई चीज बहुत बड़ी भी हो सकती है और कोई चीज बहुत छोटी भी हो सकती है। यह निर्भर करता है उस बीज पर, उस प्रजाति के प्रारम्भ पर। तो जिस प्रजाति को उत्पन्न करना है, जैसा करना है, प्रभु उसे वैसा ही करता है। प्रकृति उसे वैसा ही करती है।

इस दृष्टि से यह जो समस्या है कि यदि हम यह मान लें कि शिशु पैदा हुए हैं, उनका दो स्थानों पर विकास होता है। एक मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनने में जन्म के बाद विकास होता है और जन्म से पहले गर्भ में विकास होता है। यह जो विकास की परिस्थिति है, दोनों जगह चल रही है। इसलिये कितना विकास पृथिवी के अन्दर हुआ और कितना विकास पृथिवी के बाहर हुआ? जितने में वो व्यक्ति सम्भल सकता था, अपने को सम्भाल सकता था, उतनी स्थिति में पैदा होगा। सर्वोत्तम जो परिस्थिति है उसमें पैदा होगा। यह मन्त्र हमारी इस बहुत बड़ी समस्या का समाधान करता है।

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

क्या लाला लाजपतराय नास्तिक बन गये?- कुछ वर्षों से देश में कहीं न कहीं से यदा-कदा कुछ व्यक्ति यह प्रश्न उठा देते हैं कि लाला लाजपतराय तो नास्तिक बन गये थे। वह आर्यसमाजी नहीं रहे थे। इस दुष्प्रचार का आधार सेठ घनश्यामदास बिड़ला के नाम लिखा गया लालाजी का एक पत्र है। यह ठीक है कि लालाजी ने कभी सेठ जुगलकिशोर बिड़ला को यह पत्र लिखा था। जब सेठ बिड़ला की डायरी में यह पत्र छपा तो मेरे मित्र आर्य विद्वान् प्रो. जयदेव जी आर्य ने मुझे इस पत्र की वास्तविकता पर प्रकाश डालने तथा इस दुष्प्रचार का प्रतिवाद करने के लिये कहा।

मैंने देर किये बिना एक लोकप्रिय आर्य साप्ताहिक में एक खोजपूर्ण लेख देकर सप्रमाण व तथ्यों के आधार पर यह प्रमाणित कर दिया कि ऐसा सोचना, समझना व मानना बहुत अनर्थकारी है। यह भी लिखा कि मैं यह मानता हूँ कि यह पत्र लालाजी ने ही लिखा था।

उस समय, जब सेठ बिड़ला की डायरी छपी तभी महात्मा आनन्द स्वामी जी, महाशय कृष्ण जी, श्रीयुत पं. भीमसेन जी विद्यालङ्कार, आचार्य उदयवीर जी आदि हमारे नेता विद्वान् जो लाला जी को निकट से जानते थे उन्हें बोलना चाहिये था। उन्होंने इस दुष्प्रचार का प्रतिकार न किया। मैं व्याख्यानों में भी इसका यदा-कदा प्रतिवाद करता रहा। मेरे लिखने का कुछ तो प्रभाव पड़ा, परन्तु कुछ लोग जानबूझकर इसको नये सिरे से उठाते रहते हैं।

मुझे अमेरिका से भी इस घातक प्रचार को चुनौती देने के लिये पुनः लेखनी उठाने को कहा गया। सभायें चुप हैं। आर्यसमाज में घुसपैठिये इस प्रकार से मन ही मन में प्रसन्न हैं। मैं आज परोपकारी में लाला जी के लेखों, पुस्तकों, व्याख्यानों और उनके जीवन की घटनाओं, इतिहास के अकाट्य प्रमाणों से इस घातक प्रचार की पोल खोलते हुये **आर्यसमाज का या लाला लाजपतरायजी का एतद्विषयक प्रामाणिक पक्ष** रखूँगा। मैं अपनी प्रकाशनाधीन कुछ पुस्तकों में, विशेष रूप से विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द की जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में आर्यसमाज के इतिहास तथा सिद्धान्तों पर अति शीघ्र एक पुस्तक छपकर प्राप्य होगी।

उसमें इसका मुँहतोड़ उत्तर दे दिया गया है तथापि यहाँ भी इस विषय में पर्याप्त तथ्य, प्रमाण व ऐतिहासिक घटनायें दी जाती हैं।

१. बड़े छोटे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसी घटनायें घटती हैं जिसके कारण उसे मानसिक आघात पहुँचता है और वह उसकी ऐसी प्रतिक्रिया देता है जो उसकी अन्त:वेदना व निराशा की सूचक होती है। **वह उसके मन का स्थायी भाव नहीं होता।** श्री लालाजी का उक्त पत्र भी एक क्षणिक अथवा अस्थायी प्रतिक्रिया थी। कैसे?

कैसे?- जब लालाजी के देश से निष्कासन व माण्डले में बन्दी बनने के समय उनके डी.ए.वी. के साथी-संगी कालका में गवर्नर से मिलकर लालाजी को disown करने (सम्बन्ध-विच्छेद) का आश्वासन दे आये तो लाला जी को इससे गहरा धक्का लगा जिससे वह अति शीघ्र उबर भी गये, परन्तु एक बार तो इसी अन्त:वेदना से आपने सेठ घनश्यामदास को उक्त पत्र लिख दिया। इस सम्बन्ध में यहाँ इस पहले बिन्दु पर आज मुझे इतना ही कहना है।

२. लाला जी ने माण्डले से मुक्त होने पर स्वल्पकाल में आर्यसमाज वच्छोवाली के उत्सव पर, डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में भारभरित हृदय से व्याख्यान देते हुए आर्यसमाज की शिक्षाओं, आर्यसमाज के मिशन तथा ऋषि दयानन्द जी महाराज पर जो विचार उद्‌गार व्यक्त किये वे आज भी एक-एक आर्यसमाजी के लिए गौरव का विषय हैं। तब डी.ए.वी. कॉलेज में उन्होंने यहाँ तक कहा कि मैं किसी लीडर के कारण आर्यसमाजी नहीं बना था। आर्यसमाज की पवित्र शिक्षा ने मुझे खींचा और मेरा जीवन बदल दिया। लालाजी का यह लम्बा व पूरा व्याख्यान आज आर्यसमाज में कहीं नहीं है, परन्तु इस लेखक के पास यह ऐतिहासिक भाषण पूरा-पूरा सुरक्षित है।

३. इस व्याख्यान को आर्यसमाज ने कभी नहीं छपवाया। इसे लालाजी के आर्यसमाजी साथी क्रान्तिकारी देशभक्त ओजस्वी कवि श्री लालचन्द जी फ़लक ने छपवाया था।

४. लाला जी ने अपने सार्वजनिक जीवन में कभी भी (उस पत्र के लिखने के पश्चात् भी) लेखनी व वाणी से यह नहीं कहा और न लिखा कि मैं अब नास्तिक हूँ, वेद को नहीं

मानता या मैं अब आर्यसमाजी नहीं हूँ। मेरी इस पत्र का ढोल पीटनेवालों को खुली चुनौती है कि वे इस सम्बन्ध में लाला जी के साहित्य से, उनके व्याख्यानों से ऐसा एक भी वाक्य दिखा दें।

५. लाला जी माण्डले से छूटकर आये तो उनके आने के थोड़ा समय पश्चात् आर्यसमाज पर एक नई विपदा आ गई। पटियाला स्टेट में पटियाला रियासत के सब प्रमुख आर्यों पर राजद्रोह (sedition) का भयङ्कर केस चलाकर उन्हें बन्दीघर (यातनागृह में) में डाल दिया गया। तब उन आर्यों पर एक दोष यह भी लगाया गया कि लाला लाजपतराय कट्टर आर्यसमाजी है, वह विद्रोही है सो ये भी विद्रोही हैं।

उस case (अभियोग) में कोई भी बड़े से बड़ा वकील (कांग्रेसी लीडर भी) विद्रोही घोषित किये गये आर्यों का केस लड़ने को तैयार नहीं था। पराई आग में कौन पड़े? लाला लाजपतराय जी ने आर्यसमाज की उस अग्निपरीक्षा की घड़ी में महात्मा मुंशीराम जी से कहा, मैं अपने आर्यभाइयों का पटियाला जाकर case (अभियोग) लड़ूँगा। तब महात्मा मुंशीराम जी ने पटियाला स्टेट में लालाजी के प्रति दुर्भावना तथा पक्षपात के कारण उनकी सेवाओं का वकील के रूप में लाभ न उठाया और उनकी कोई पारिवारिक समस्या भी इसका एक कारण था। फिर भी इस लम्बी लड़ाई में लाला जी आर्यसमाज की रक्षा के लिये आर्यनेताओं की अग्रिम पंक्ति में खड़े थे। इतिहास के इस तथ्य को Hard Fact को कोई माई का लाल झुठलाकर दिखाये तो हम भी देखें।

६. लालाजी ने उस पत्र के समय से लेकर अपने बलिदान की घड़ी तक आर्यसमाज में पचासों लेख लिखे और कई छोटी -बड़ी पुस्तकें आर्यसमाज के सम्बन्ध में छपवाईं। जिनमें प्रत्येक पुस्तक उनके द्वारा लिखी गई दूसरी पुस्तक से आर्यसमाज के प्रति लाला जी की श्रद्धाभक्ति का कहीं बढ़िया प्रमाण है। सेठ जी की आड़ लेकर और लालाजी के पत्र की दुहाई देकर अपनी दुर्भावनाओं के वशीभूत आर्यसमाज पर प्रहार करनेवाले इन पुस्तकों की प्रामाणिकता, सच्चाई तथा आर्यसमाज के प्रति व्यक्त की गई श्रद्धा व आस्तिक भावना को झुठलाकर दिखायें।

७. लालाजी को नास्तिक बताने के प्रचार में लगे तत्त्वों को पता होना चाहिये कि कभी महात्मा गांधी ने आर्यसमाज की मूलभूत मान्यता 'वेद ईश्वरीय ज्ञान है', ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, सत्यार्थप्रकाश व शुद्धि-आन्दोलन पर निराधार तथा दिल दुखानेवाला कटु लेख लिखा था। तब लालाजी तड़प उठे। प्रभु के नित्य अनादि ज्ञान वेद पर आप गाँधीजी के वार-प्रहार को न सह सके। तब विश्वप्रसिद्ध आर्य कहानीकार श्री सुदर्शन लिखित 'महात्मा गाँधी तथा आर्यसमाज' पुस्तक लाला जी ने प्रकाशित प्रचारित की। आप इसको देशभर में लाखों की संख्या में छपवाकर प्रचारित करना चाहते थे। ईश्वर की वेदवाणी की रक्षा के लिये महात्मा गाँधी के लेख की शव-परीक्षा करवाने वाले लाला लाजपत राय जी को नास्तिक बताने वाले इतिहास के दर्पण में अपना मुख देखें और सत्य का सामना करें।

८. लाला जी लोनावाला, मुम्बई के कैवल्य धाम में सुप्रसिद्ध योग संस्थान में एक बार कई सप्ताह के लिये योगाभ्यास का प्रशिक्षण लेने गये। लोकमान्य तिलक भी वहाँ कभी गये थे। जो अडिग आस्तिक और ईशोपासक होगा वही ऐसे मुनि महात्मा से योग विद्या सीखने जायेगा। नास्तिक का वहाँ क्या काम? और नास्तिक वहाँ जावेगा ही क्यों? आर्यसमाज से द्वेष करनेवाले लाला लाजपतराय जी को नास्तिक बताने का दुष्प्रचार करने वाले महानुभाव नोट कर लें कि लाला जी योग-साधना के लिये लोनावाला गये। यह कोई लुकी-छुपी घटना नहीं है। उस समय के कई पत्रों में इस सम्बन्ध में लेख छपते रहे। हमने भी ऐसे लेख पढ़े हैं। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य भद्रसेन अजमेर भी उस कालखण्ड में उसी आश्रम में योग-विद्या सीख रहे थे।

९. लाला जी ने अपने बलिदान से कोई पाँच-छः वर्ष पूर्व आर्यसमाज को झकझोरने तथा अपने कर्त्तव्यों-मन्तव्यों को श्रद्धा-भक्ति से अपने आचरण में लाने के लिये उर्दू में एक छोटी-सी पुस्तक लिखी थी। इसमें ईश्वर की वेदवाणी के प्रचार-प्रसार में जी जान से, सर्वसामर्थ्य आर्यों से समर्पण भाव से संघर्ष करने व आगे बढ़ने की प्रेरणा आपने दी है। इस पुस्तक का एक-एक पृष्ठ, एक-एक पंक्ति और एक-एक शब्द लाला जी के अडिग ईश्वर-विश्वास, वेद के प्रति आपकी आस्था तथा ऋषि दयानन्द के मिशन के लिये आपके हृदय की तड़पन का ज्वलन्त प्रमाण है। इस अलभ्य पुस्तक से लाला जी की कुछ सूक्तियाँ मेरी प्रकाशनाधीन पुस्तक में है।

यह दुर्लभ पुस्तक आर्यसमाज में केवल मेरे पास ही है।

१०. इस विषय में केवल दो-तीन घटनायें देकर समाप्त किया जावेगा। शेष फिर कभी अवसर मिला तो और नये-नये प्रमाण दे दिये जावेंगे। लाला जी प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में जब अमेरिका में थे तो वहाँ किसी के विवाह संस्कार में भाग लेने का ही नहीं संस्कार करवाने का भी आपको गौरव प्राप्त हुआ। विवाह वेदोक्त रीति से हुआ। एक वैश्यकुल में जन्मे लाला जी ने ब्राह्मण का कर्म (विवाह-संस्कार) करवाया। इससे बढ़कर उनके आस्तिक तथा आर्यसमाजी होने का क्या प्रमाण हो सकता है?

११. लालाजी कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये ट्रेन में बैठे तो उन्हें स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान होने का समाचार मिला। वह दिल्ली उतरकर शहीद स्वामीजी की शव-यात्रा आदि में सम्मिलित हुये। तब दिल्ली की विराट सभा में उनका स्मरणीय भाषण इतिहास की एक स्वर्णिम घटना बन गई। वह भाषण क्या था, इतिहास साक्षी है कि बस सिंह की दहाड़ थी। आपकी अश्रुधारा बह रही थी। आपने उस भाषण में यह कहा था, ''अय श्रद्धानन्द! मैं जीवनभर तुम्हारे जैसा बनने का यत्न करता रहा परन्तु आप जैसा जीवन न जी सका। अब ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना व कामना है कि मुझे भी आप जैसी मृत्यु नसीब हो।'' ईश्वर से ऐसी मौत क्या नास्तिक माँगेगा? इससे बड़ा भी कोई और प्रमाण उनके आस्तिकपन तथा आर्यत्व का चाहिये? लाला जी का यह भाषण इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है।

१२. लाला जी ने अपने परिवार के सब समारोह यज्ञ-हवन से सम्पन्न करवाये। लोक सेवक मण्डल आदि की स्थापना भी यज्ञ हवन करके ही की गई।

लालाजी ने आर्यसमाज के निर्माताओं के जीवन पर लिखी गई एक विशेष पुस्तक 'आर्यवीरों के दर्शन' का प्राक्कथन लिखा था। उसमें लालाजी की संक्षिप्त व प्रेरक जीवनी भी है। लाला जी ने अपने प्राक्कथन में अपने को वेदाभिमानी आस्तिक आर्यसमाजी बताते हुये आर्यसमाजियों को समाज-सेवा व धर्म-प्रचार की प्रबल प्रेरणायें दी हैं।[१]

आर्यसमाजी इस विषय में कुछ बोलेंगे नहीं, मौन रहेंगे तो यह समाज से द्रोह होगा। जो कुछ मैंने लिखा है इसे मुखरित करना होगा।

मुंशी इन्द्रमणिजी विषयक कल्पित कथन- मुंशी इन्द्रमणि जी अपने एक चेले के जाल में फँसकर आर्यसमाज से अपनी भूल के कारण निष्कासित किये गये, परन्तु मृत्यु से पूर्व अपने किये पर उन्हें पछतावा भी हुआ। उनका दाहकर्म वेदोक्त रीति से ही किया गया। उनके एक पोते के मुसलमान बनने तथा उनके भांजे के ईसाई बनने पर (मुंशी जी के मरणोपरान्त) उनके परिवार की गुहार पर आर्यसमाज उन दोनों को पुनः आर्य जाति में खींच लाया। **डॉ. भारतीय ने मुंशी जी के जन्म-मृत्यु** के सम्बन्ध में कई मनगढ़न्त बातें लिखी हैं यथा मुंशी जी का जन्म सन् १८६५ तथा सन् १८४५ भी लिख दिया। उनकी मृत्यु बार-बार सन् १९२१ में लिखते गये।

मुंशी जी ने कोई पुस्तक आर्यधर्म के लिये, आर्यसमाज में सम्मिलित होकर नहीं लिखी थी फिर आर्य लेखक कोश में उनका उल्लेख किसलिये? मैंने पं. लेखराम जी के सन् १८९३ में प्रकाशित एक लेख के आधार पर मुंशी जी का निधन अप्रैल सन् १८९१ में लिखा। भारतीय जी ने अपनी भूल स्वीकार न की। अब श्रीयुत राहुल आर्य अकोला ने 'आर्यसमाचार' मासिक उर्दू के सन् १८९१ के कई अंक मुझे खोजकर दिये हैं। इनमें एक अंक में मुंशी इन्द्रमणि जी की सन् १८९१ में मृत्यु होने का समाचार छपा मिलता है। आर्यसमाज ने उनके निधन पर उन्हें श्रद्धाञ्जलि दी। **पं. लेखराम के कथन की इससे पुष्टि हो गई।** उनके निधन को सन् १९२१ में बताना एक विशुद्ध गप्प का आर्यसमाज में प्रचार एक घृणास्पद कर्म था।

पं. लेखराम जी और मनुस्मृति- इस विषय पर मैंने बहुत कुछ खोज करके पं. लेखराम जी के जीवन-चरित्र में सप्रमाण लिखा। फिर परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पण्डित जी के साहित्य में लिखा। न जाने आर्यसमाज ने इस खोज का क्यों लाभ नहीं उठाया। माननीय डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का ध्यान ही इधर नहीं गया तो दूसरे इसका क्या लाभ उठाते? आर्यसमाज में मनुस्मृति में प्रक्षेप तथा उसके शुद्धिकरण का आन्दोलन पं. लेखराम जी द्वारा आरम्भ किया गया। आपने मनुस्मृति के पचासों संस्करण एकत्र कर लिये। जब कार्य आरम्भ करने वाले थे तो उनका बलिदान हो गया। अपनी ग्रन्थावली में इस विषय में कुछ लिख भी गये।

आर्यसमाज में यह विषय उठाया ही न गया- डॉ.

सुरेन्द्र कुमार जी को उठती जवानी में मनुस्मृति के शुद्ध संस्करण का अति कठिन व गम्भीर विषय कैसे सूझा तथा वह इस पर इतना गौरवपूर्ण सर्वमान्य शोध कैसे कर पाये? एक मैंने ही डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी से तथा श्री लाला दीपचन्द जी से उनकी मनुस्मृति का पहला संस्करण छपने पर यह प्रश्न पूछा था। आर्यसमाजियों ने डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी की इस उपलब्धि को प्रचारित करके आर्यसमाज की शान को तो क्या बढ़ाना था, इससे उलट दिल्ली में मनु और मनुस्मृति के कई अधकचरे विशेषज्ञ निकल आये।

श्रद्धाराम से शास्त्रार्थ की कल्पित कहानी- श्री लाजपतराय ने पं. देवप्रकाश जी की मन्दिरों की लूट पुस्तक छपने पर मेरी सम्मति माँगी। मुझे वह पुस्तक छपने पर दिखाई तक नहीं गई। मैंने तब उन्हें कहा, ''पण्डित जी का जीवन-परिचय जो दे रहे हो, वह भी मुझे दिखा दो। कोई आरम्भिक काल का तथ्य छूट न जावे।'' आपने श्री अमर स्वामी जी के नाम से दिया गया वह जीवन-परिचय मुझे दिखाया। मैंने उसमें से एक भयङ्कर भूल का सुधार कर दिया। भूल क्या की गई? उसमें पं. देवप्रकाश का श्रद्धाराम फिलौरी से शास्त्रार्थ करवा दिया गया। मेरी पकड़ में यह गप्प आ गई। मैंने उन्हें बताया कि श्रद्धाराम की मृत्यु तो सन् १८८२ में हो गई और पं. देवप्रकाश जी का जन्म सन् १८८९ ई. में हुआ। भला यह शास्त्रार्थ कहाँ हुआ? और कैसे हुआ?

श्री लाजपतराय ने यह गप्प तो हटा दी, परन्तु पं. देवप्रकाश जी पर अपनी पुस्तक लिखते हुये मुझे यह पक्का निश्चय हो गया कि जीवन-परिचय श्री अमरस्वामी जी लिखित है ही नहीं। यह लाजपतराय जी ने उनके नाम पर दे दिया है। श्रद्धाराम के साथ शास्त्रार्थ की कहानी श्री लाजपत को कैसे सूझ गई? यह सूझ लाजपतरायजी की भी नहीं। आपने यह कहानी सन् १९७२ में छपे पं. देवप्रकाश जी के अभिनन्दन ग्रन्थ से उठाकर श्री अमरस्वामी जी सरीखे असाधारण स्मृतिवाले महाविद्वान् के माथे मढ़ दी। न जाने उस ग्रन्थ के सम्पादक लेखक श्री ज्ञानी पिण्डीदास जैसे अनुभवी विद्वान् ने इतनी भयङ्कर भूल कैसे कर दी? इतिहास भी एक शास्त्र है। यह मत समझें कि आपने कुछ पढ़-सुन लिया तो आप इतिहासकार बन गये।

पं. देवप्रकाश जी का जीवन-चरित्र- मुझे देशभर से कई हिन्तुत्ववादियों के चलभाष आते रहे। पं. देवप्रकाश आदि हमारे विद्वान् परकीय मतों को तजकर वैदिकधर्मी कैसे बने? यह पूछने की बजाय वह हिन्दू कैसे बना? अमुक का हिन्दू बनने बनाने का इतिहास बताओ। मैं तब ताड़ गया कि यह पूछने वाले कोई आर्यसमाजी नहीं। यह आर्यसमाज की सेवाओं व उपलब्धियों को अपने खाते में डालकर आर्यसमाज को मिटाना चाहते हैं।

पण्डित जी की आत्मकथा- पं. देवप्रकाश जी ने कभी अपनी अधूरी आत्मकथा लिखी थी। वह पाण्डुलिपि मुझे सौप दी गई। अब पण्डित जी का लिखा पठनीय खोजपूर्ण जीवन-चरित्र प्रभुकृपा से शीघ्र पूरा हो जावेगा। यह अगले वर्ष धूमधाम से छपेगा।

पं. देवप्रकाश आर्यजाति के ऐसे पहले प्रकाण्ड विद्वान् होंगे जो इस्लाम से आर्यसमाज में आये और आर्यसमाज उनका उसी श्रद्धाभक्ति और शान से प्रेरणाओं से परिपूर्ण जीवन-चरित्र प्रकाशित कर रहा है, जिस उत्साह चाह व धर्मभाव से आर्यो ने पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, पं. रामचन्द्र देहलवी, पं. शान्तिप्रकाश आदि अपने निर्माताओं के जीवन आज पर्यन्त लिखे व छपवाये हैं। राजनैतिक अर्द्धराजनैतिक दलों की कुचाल मैंने विफल बना दी है।

ये दुर्घटनायें- सामूहिक बलात्कार- हिन्दू जाति के हितैषियों को हिन्दुओं के रोग व दुर्बलतायें दूर करनी होंगी। सामूहिक बलात्कार, लूटखसोट, हत्याओं व ठगी की घटनायें, जय सियाराम, गंगा गंगा, बद्रीनाथ, केदारनाथ, बर्फानी बाबा, राममन्दिर की कहानियाँ सुनाने से बन्द नहीं होंगी। उत्तर प्रदेश बातों से नहीं बनेगा। धर्म-प्रचार से, सत्य, संयम, एक ईशोपासना, ईश्वर की सर्वव्यापकता के प्रचार से देश का बचाव तथा फिर से नवनिर्माण होगा। सारे देश में ऐसी गन्दी घटनायें घट रही हैं। आदित्यानाथ जी मुख्यमन्त्री बनकर क्या घोषणायें करते रहे? उन्होंने सोचा था क्या? हो गया क्या? वह भी सोचते होंगे कि मैंने पाया क्या? आओ! सदाचरण की लहर चलाओ। देश बचाओ। देश भर में सारे दलों को सामूहिक बलात्कार का उन्मूलन करना होगा।

टिप्पणी- १. श्री डॉ. वेदपाल जी की प्रेरणा से इस अलभ्य उर्दू पुस्तक का मैंने हिन्दी अनुवाद व सम्पादन कर दिया है।

ब्राह्मसमाज-प्रार्थना समाज के दोष

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)

प्रो. रामसिंह एम. ए.

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

ब्राह्म-समाज और प्रार्थना-समाज की स्थापना भी आर्यसमाज के लगभग साथ ही हुई। किन्तु इसके संस्थापक पश्चिम की चकाचौंध में बह गए। भारत के उत्थान का यह प्रयत्न भी बाह्य प्रभाव से प्रेरित होने के कारण असफल हुआ। इनका विवेचन विद्वान् प्रो. रामसिंह जी की लेखनी से लिखित लेख में पढ़िये। -सम्पादक

ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण का पूरा जोर रहा। इस्लाम का आक्रमण भारत पर प्रधानतया धार्मिक था। इस्लाम की तलवार भारत को मुसलमान बनाने आयी थी, परन्तु भारतीय राजनैतिक दृष्टि से चाहे पिछड़ गये और पराजित होकर पराधीन भी रहे, परन्तु धार्मिक क्षेत्र में मुसलमानों को पूर्ण सफलता नहीं मिलने दी। इस्लाम के शासनकाल में हिन्दुओं ने आन्तरिक और बाह्य साधनों से जन-समुदाय को इस्लाम के हलके में आने से काफ़ी रोक-थाम की। बाल-विवाह, सती-प्रथा, पर्दा, खान-पान का बन्धन, जाति और रोटी-बेटी के कड़े नियम, छूआछूत आदि अनेक ऐसी रीतियाँ बनाई गईं जिनसे बाह्य रूप से हिन्दू धर्म की रक्षा की गई। इसी प्रकार कबीर-सरीखे सन्तों के द्वारा इस्लाम और हिन्दू धर्म को निकटतर लाने का यत्न भी एक प्रकार से मुसलमानी वेग को रोकने का सरल उपाय था। इस प्रकार हिन्दू धर्म अपनी आत्मरक्षा में लगा रहा और इन छः-सात शताब्दियों में कोई माई का लाल उत्पन्न नहीं हुआ जो इस्लाम के विरोध में धर्म के स्तर पर टक्कर लेता और न्याय और युक्ति की तलवार से ऐसा धावा बोल देता कि इस्लाम को लेने के देने पड़ जाते। दुर्भाग्यवश इस प्रकार के प्रत्याक्रमण का किसी को विचार ही नहीं आया।

इन रीति-रिवाजों का जहाँ अच्छा परिणाम हुआ, वहाँ हिन्दू-धर्म का दम भी घुट गया और देखते-देखते अनगणित मत और सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए। हिन्दू धर्म का ढाँचा ही बिगड़ गया। नवीन रूढ़ियाँ अब किले का काम न दे सकीं। उस पर एक नई आपत्ति और आ गई। देश में यूरोपियन जातियों का आगमन प्रारम्भ हो गया। अन्त में अंग्रेजों का आधिपत्य होने से ईसाइयों को सुअवसर मिल गया। उन्होंने इस बिगड़ी हुई दशा का लाभ उठाकर हिन्दुओं को ईसाई बनाना प्रारम्भ कर दिया गया। रही-सही कसर अंग्रेजी शिक्षा ने पूरी कर दी। वही रूढ़ि और दृढ़ बन्धन और रीति-रिवाज जिन्होंने इस्लाम से रक्षा में सहायता की, अब अभिशाप बन गये।

ऐसी स्थिति में जिन महानुभावों ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए जो प्रयत्न किये वे सराहनीय अवश्य हैं; परन्तु वे राम-बाण औषध नहीं थे।

ब्रिटिश-शासन की नींव सबसे पहले बंगाल में पड़ी-इसलिये स्वभावतः, हिन्दू समाज की रक्षा के आन्दोलनों का श्रीगणेश बंगाल से हुआ। श्री राममोहन राय इनके जन्मदाता कहे जा सकते हैं। इन्होंने मूर्त्तिपूजा, जाति-पाँति, रूढ़िवाद और सती-प्रथा के विरुद्ध घोर प्रचार किया, साथ ही ईसाई-धर्म के प्रति भी अनुराग उत्पन्न किया।

सन् १८२८-३० में ब्राह्म समाज की नींव डाली। सन् १८३३ में इनके देहावसान के पश्चात् ब्राह्म समाज की बागडोर श्री देवेन्द्रनाथ जी ठाकुर (कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता) के हाथ आयी। इन दिनों श्री स्वामी जी महाराज (महर्षि दयानन्द) जी की ख्याति काशी-शास्त्रार्थ के कारण सारे देश में फैल चुकी थी। श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी श्री स्वामी जी से अत्यन्त प्रभावित थे। अत: उन्होंने श्री स्वामी जी को बंगाल आने का निमन्त्रण दिया था।

श्री स्वामी जी दिसम्बर १८७२ में कलकत्ता पहुँचे। इन दिनों सभी गण्य-मान्य व्यक्तियों द्वारा आपका स्वागत किया गया। श्री स्वामी जी ने इस अवसर से लाभ उठाकर श्री केशवचन्द्र सेनादि सुधारक-समुदाय द्वारा परिचालित ब्राह्म समाज तथा तत्सम अन्य समाजों का अच्छा अनुशीलन किया तथा उनके गुण-दोष बताकर उन्हें वैदिक धर्म के गूढ़ तत्त्वों को समझाया। परन्तु, ये लोग आर्यधर्म की महानता स्वीकार करते हुये भी अपने प्रारम्भ किये गए कार्य से लौटने का साहस न जुटा सके। इसलिये इस एकादश समुल्लास में मुनिवर ने पुराने और इस्लामी काल के आर्यावर्त्तीय मतमतान्तरों की समीक्षा के साथ-साथ ईसाई-धर्म के उपदेशों से प्रेरित और नवीन पाश्चात्य-शिक्षा से प्रभावित ब्राह्मसमाजादि सम्प्रदायों की भी काफी समालोचना की है। श्री महाराज इन नवीन मतों को अधिक से अधिक प्रशंसा के रूप में 'एक गुलदस्ता' कह सकते थे जिनमें प्राय: सभी मतों के फूल इकट्ठे करने का प्रयत्न तो किया जाता रहा-परन्तु उस गुलदस्ते का मूल (जड़) नहीं, अत: वह कभी स्थायी नहीं हो सकेगा, शीघ्र ही मुरझा जायेगा।

अत: ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज (तथा अन्य इसी प्रकार के प्रचलित समाज देव समाज थियोसोफ़िकल समाज आदि) अच्छे हैं वा नहीं-इस प्रश्न-का समाधान करते हुए श्री महाराज कहते हैं ''कि इनमें कुछ-कुछ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं'' इनके नियम सर्वांश में अच्छे नहीं, क्योंकि वेद-विद्याहीन लोगों की कल्पना का कोई सत्याधार नहीं होता, इसलिये वह सर्वाङ्गीण सत्य नहीं हो सकतीं। हाँ ब्राह्मसमाज और प्रार्थना-समाज ने ईसाइयों की ओर झुककर हिन्दू धर्म की कुछ बातों को लेकर कुछ लोगों को ईसाई होने से बचा लिया। अवतारवाद, मूर्त्तिपूजा तथा अन्य अन्धविश्वासों और धार्मिक कुरीतियों का भी खण्डन किया। इस अंश में उनका प्रचार और प्रयत्न स्तुत्य है।

श्री स्वामी जी ने ब्राह्म समाज आदि संस्थाओं को निकट से देखा था अत: उन्होंने संक्षेप से इनके १६ सोलह दोष गिनाये है इनमें अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं-इस प्रकार के अन्य संस्थाओं की समालोचना इन्हीं के अन्तर्गत है। श्री स्वामी जी के लेख को दृष्टि में रखते हुये इनका निम्न प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है।

१-पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा से ये लोग अत्यन्त प्रभावित हैं। उन्हीं देशों की और उन्हीं लोगों की प्रशंसा करते नहीं थकते- इसलिये इन लोगों में स्वदेश-भक्ति अति न्यून है। "Keshab Chandra Sen ran counter to the rising tide of national consciousness then feverishly awakening.

(Prophets of India Page 97)

रोम्यां रोलां लिखते हैं-केशवचन्द्र सेन भारत की उस राष्ट्रीय जागृति के कट्टर विरोधी थे जो उन दिनों ज्वर की भाँति लोगों को हिंडोल रही थी।

२-व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते-उनकी निन्दा करते हैं। आर्यावर्ती लोगों को मूर्ख समझते हैं-श्री केशवचन्द्र सेन अपने एक व्याख्यान में जो 'जीसस क्राइस्ट, यूरोप-एशिया' के शीर्षक से सन् १८६५ में छपा है-कहते हैं-'I cherish the profoundest reverence for the character of Jesus and the lofty ideal of moral truth which he taught and lived and thus in Christ Europe and Asia, the East and the West may learn to find harmony and unity"-(Jesus Christ Europe and Asia by K. C. Sen)

मैं ईसा के चरित्र तथा नैतिक सत्यता के महान आदर्श के प्रति जिसका न केवल उन्होंने प्रचार किया प्रत्युत तदनुसार जीवन यापन किया, अत्यन्त आदर और मान करता हूँ। ईसा में ही एशिया और यूरोप, पूर्व और पश्चिम

एकता और सामञ्जस्य देख सकते हैं। (जीसस् क्राइस्ट, यूरोप एण्ड एशिया के. सी. सेन)

३-वैदिक ग्रन्थों की निन्दा करते हैं। इनके उद्देश्य पुस्तक में साधुओं की गणना में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक, चैतन्यादि के नाम तो मिलेंगे, परन्तु ऋषि-मुनियों का तनिक भी उल्लेख नहीं।

प्रमाण स्वरूप ब्राह्मसमाज का पाँचवाँ नियम देखिये- ''परमेश्वर कभी भी नर-तन धारण करके मनुष्य नहीं बनता। उसका ईश्वरत्व प्रत्येक मनुष्य में वास करता है और कुछ में अधिक स्पष्टता से प्रकट होता है। मूसा, ईसामसीह, मुहम्मद, नानक, चैतन्य तथा दूसरे महानुभाव विशेष समयों पर प्रकट हुए और संसार को अनेक लाभ दिये-इसमें कहीं भी न 'राम' का नाम, न 'कृष्ण' का न किसी ऋषि का, न मुनि का।

४-अंग्रेज, यवन, अन्त्यज आदि से भी खाने-पीने का भेद नहीं रखा। ''इन्होंने समझा कि केवल परस्पर खाने-पीने और जाति-भेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा।'' इन शब्दों के साथ श्री स्वामी जी ने 'जाति' शब्द की व्याख्या करते हुये भली-भाँति समझाया है कि जाति-भेद ईश्वरकृत है, परन्तु मनुष्यकृत जो जाति भेद है, वह केवल गुण-कर्म स्वभावानुसार ही किया जाना उचित है। राजा लोग (अधिकारी वर्ग) तथा विद्वान् लोग ही भलीभाँति परीक्षा करके ही वर्ण का निश्चय किया करें। जन्मना प्रचलित जातिभेद वेद-विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य और निन्दनीय है। इसी प्रकार भोजन-भेद भी पशु-पक्षी आदमियों में ईश्वरकृत है, परन्तु मनुष्यों द्वारा देशकाल और वस्तु स्थिति के अनुसार मनुष्यकृत भी है, इससे ब्राह्मसमाजी तथा अन्य इसी प्रकार के लोग खान-पानादि और रहन-सहन में यूरोपवालों की अन्धी नकल करके उन्नति नहीं कर सकते। धर्माधर्म विचार द्वारा अपनी संस्कृति और वैदिक जीवन-पद्धति का आश्रय लेने से ही हम सब का कल्याण हो सकता है।

५-छूत-अछूत (हरिजन) व्यवहार का भी सभी नवीन समाज-सुधारकों ने खण्डन किया है। श्री राममोहन राय से लेकर गाँधी जी तक इसके विरुद्ध प्रचार करते रहे हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इस समस्या को हल करने लिये जो पग उठाये गये, उनमें विधान की धारा १७ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है-उसमें लिखा है- ''छूआ-छूत और उसका व्यवहार प्रत्येक अवस्था या रूप में वर्जित है।'' इसी को दृष्टि में रखते हुये जन प्रतिनिधि-विधेयक, १९५१ (Representation of Peoples Act 1951) की धारा १२३ में जाति-पाँति के नाम पर निर्वाचन के समय आन्दोलन करना वर्जित ठहराया गया तथा १९५६ में लोकसभा द्वारा (The Untouchability Act 1956) छुआछूत-विरोधी विधेयक बनाकर अछूत कहे जाने वाले लोगों को, मन्दिरों, भोजन-गृहों, सार्वजनिक संस्थाओं, कुओं और नलादि स्थानों पर बेरोक-टोक प्रवेश करने और लाभ उठाने की आज्ञा दी गई तथा वैवाहिक-सम्बन्ध नियमों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन करके हरिजन-समस्या को सुलझाने का सदैव के लिये स्तुत्य प्रयास किया, परन्तु सच तो यह है कि इस बुराई को दूर करते-करते अनेक अन्य बुराइयाँ उत्पन्न हो गई हैं। हरिजन एक अलग-थलग जाति (caste) का रूप ले रही है। भारतीय समाज में एकरूपता के स्थान पर अनेकरूपता और संघटन के स्थान पर विघटन ही बलवान है। जन्म-जातिमूलक प्रवृत्ति बढ़ रही हैं।

भगवान् दयानन्द के मन्तव्यानुसार समाज की इन सभी जन्म-मूलक बुराइयों को दूर करने का एक ही मार्ग है और वह है वैदिक वर्णाश्रम धर्म का क्रियात्मक पुनर्निर्माण। धरा-धाम पर इस आर्षमर्य्यादा के बिना शाश्वत-शान्ति और सुख नहीं मिल सकेगा। आज अमेरिका में गोरे-काले का भेद, अफ्रीका में जाति-विद्वेष तथा इसी प्रकार के मौलिक प्रश्न सभी देशों में गुण-कर्म-स्वभाव के प्राकृतिक नियम के आधार पर ही हल किये जा सकते हैं।

६- ''ब्राह्मसमाजादि मत वास्तव में सृष्टि के क्रम तथा जीवादि के अस्तित्व के सम्बन्ध में न वैज्ञानिक दृष्टि से सोचते हैं और न गम्भीरतापूर्वक इनका विवेचन ही करते हैं। श्री अरविन्द के लेखानुसार भी ''स्वामीजी में, १९ वीं शती के अन्य धर्म- सुधारकों की अपेक्षा यह विशेषता थी कि वह वेदों के अद्वितीय पण्डित थे। राजा राममोहन राय, श्री देवेन्द्रनाथ, श्री केशवचन्द्र सेन, श्री रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द वेदों के ज्ञाता

नहीं थे। ये केवल उपनिषदों तक ही जाकर ठहर गये।''

इसी कारण इन महानुभावों के मन्तव्य शङ्कर-मत के अनुसार व्याख्याकृत उपनिषदों के ज्ञान तक सीमित रह गये। ''उपनिषदों को भी आधार-ग्रन्थ की तरह माना, प्रमाण की तरह नहीं। इससे भी बढ़कर विचित्र बात यह हुई कि ये ब्राह्मसमाजादि कुरान और इञ्जीलादि सभी मत-ग्रन्थों को समान आदर देते हुए उनकी अवैदिक धारणाओं को भी मानने लगे। यथा-

७-पश्चात्ताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति। श्री स्वामी जी महाराज इस पर रोष प्रकट करते हुये लिखते हैं कि-'इससे जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं। पुराणी लोग तीर्थ आदि से, जैनी लोग नवकार मन्त्र, जप, तीर्थादि से, ईसाई-ईसा में विश्वास से, मुसलमान (तोबा) करने से, पाप से छुटकारा मानते हैं। ये सब वेद-विरुद्ध बातें हैं। इन्हीं से तो जगत् में पाप बढ़ जाते हैं। बिना भोग के पाप-पुण्य की निवृत्ति असम्भव है तथा ईश्वरीय न्याय के विपरीत।

वैदिक मन्त्रों में जो भी प्रार्थनायें हैं, वे केवल पाप तथा अधर्म की वृत्तियों को रोकने, भविष्य में पाप न करने और सदैव धर्म्माचरण करने को हो प्रतिपादित करती हैं। किये हुए पापों के क्षमा होने का वर्णन कहीं भी नहीं है। श्रुति और स्मृतियों के अतिरिक्त रामायण और महाभारत तक स्थान-स्थान पर यही उद्घोष करते हैं। यथा-

अवश्यमेव लभते फलं, पापस्य कर्मण:।
भर्त: पर्यागते काले. कर्ता नास्त्यत्र संशय:।।

(वाल्मीकि. युद्ध. १११)

यत्करोत्यशुभं कर्म शुभं यदि वा सत्तम।
अवश्यं तत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशय:।।

(महाभारत. वन. अध्याय २०८)

८-ब्राह्मसमाजादि लोग जीव की अनन्त उन्नति मानते हैं, जो ज्ञान-विज्ञान और तर्कादि के सर्वथा विरुद्ध है। जीव ससीम है, अल्पज्ञ है, उसके गुण-कर्म-स्वभाव का फल भी ससीम ही होगा।

वास्तव में ब्राह्मसमाज के नेताओं पर ईसाइयत का इतना प्रभाव था कि वे 'मोक्ष' और 'पुनर्जन्म' के सम्बन्ध में अधिक गवेषणापूर्वक विचार ही नहीं कर सके। श्री स्वामी निर्वेदानन्द जी लिखते हैं-

In its conception of religious faith as well as social reform, the Brahma Samaj leaned at times to considerable extents on exotic ideals. From its very conception it bore the stamp of Western Christianity. Keshab Chandra went so far as to soak the very core of the Brahmas creed with Christian ideals.

(Cultural Heritage of India. Page 445)

अर्थात धार्मिक विश्वास और सामाजिक-सुधारों की कल्पना के लिये ब्राह्मसमाज को कभी-कभी बहुत सीमा तक भ्रमात्मक आदर्शों पर निर्भर होना पड़ा। प्रारम्भ से ही उस पर पाश्चात्य ईसाइयत की छाप रही। श्री केशवचन्द्र जी तो इतनी दूर चले गये कि उन्होंने ब्राह्म-धर्म की नींव ही ईसाई-आदर्शों में सराबोर कर डाली।

९-ब्राह्मसमाजी इसी प्रकार न पुनर्जन्म को मानते हैं और न ही पूर्वजन्म को। यह धारणा भी ईसाई और मुसलमानों के प्रभाव से ही बनी है। ये लोग यह नहीं समझते कि जीव शाश्वत और नित्य है और इसी कारण जीव के कर्म भी प्रवाह रूप से नित्य हैं।

पूर्व ओर अपर जन्म न मानने से ईश्वर के विषय में चार प्रकार के दोष सम्भव हो जाते हैं-१. **कृतहानि**- भला यदि मरने के पश्चात् जन्म न हो, तो इस लोक में किये हुए कर्मों का फल कब मिलेगा? क्या कर्म (शुभ या अशुभ) बिना फल के रह जायेंगे। २. **अकृताभ्यागम**- कर्म किये बिना ही सुख-दु:ख रूप फल का भोग अकृताभ्यागम दोष कहलाता है। बिना कर्म किये हुए ही संसार में अन्धे, लंगड़े, अमीर, गरीब आदि की व्यवस्था क्यों और कैसे? इस दोष को दूर करने के लिये पूर्व-जन्म का मानना अनिवार्य हो जाता है। इसी प्रकार ३. **नैर्घण्य** और **४. वैषम्य** दोषों को भी समझना चाहिये। बिना अपराध के दण्ड देना और अकारण ही कोई सुखी और कोई दु:खी बनाया जाना-न्याय और सम-व्यवहारता के विपरीत है। इन दोषों का निवारण और समाधान केवल पूर्व-पर जन्म मानने से हो हो सकता है, अन्यथा नहीं।

१०-ब्राह्म-समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन ईसाइयत के प्रभाव में आकर यहाँ तक उदार हो गये थे कि इन्होंने न केवल अग्निहोत्रादि कर्त्तव्य-कर्मों को तिलाञ्जलि दी प्रत्युत एक वृहत्-जन समूह के समक्ष अपने यज्ञोपवीत को भी उतार कर फेंक दिया और इस प्रकार स्वयं एक कट्टर बुद्धिवादी होने का दावा करने लगे। सृष्टि के पूर्व के एक ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व को भी नहीं मानते थे।

सन् १८७२ में श्री स्वामी जी कलकत्ते पधारे तो सेन महोदय श्री स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए और अपने समस्त सन्देहों को स्वामी जी के सन्मुख रखा। साथ ही यह भी पूछा कि महाराज भिन्न-भिन्न धर्मों के माननेवाले लोग अपने मान्य-ग्रन्थ को ईश्वरीय और अन्तिम प्रमाण मानते हैं और आर्य वेद को ही ईश्वरीय-ज्ञान कहते हैं। हम कैसे जानें कि किसका कहना सच्चा है? श्री स्वामी जी ने युक्ति-युक्त और प्रमाणसहित वचनों से सेन महोदय के सभी सन्देहों का समाधान किया और साथ ही कुरान और इञ्जील-बाइबिल के अनेक दोष दिखाकर बलपूर्वक कहा- ''सभी भाँति निर्दोष होने से वैदिक धर्म ही सच्चा है।''

इस वाक्य पर सेन महाशय के मुख से सहसा निकल पड़ा-

''शोक है कि वेदों के अद्वितीय विद्वान् अंग्रेजी नहीं जानते, अन्यथा इंग्लैंड जाते समय मेरे इच्छा अनुकूल साथी होते।''

श्री स्वामी जी ने भी तत्काल उत्तर दिया- ''शोक है कि ब्राह्म-समाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वे नहीं समझते''- (श्रीमद्दयानन्दप्रकाश) ब्राह्म-समाज, प्रार्थना-समाज तथा इसी प्रकार के तात्कालिक संगठनों की स्थापना और उनके सिद्धान्तों की अपूर्णता को देखकर ही स्वामी जी ने उनके नेताओं से प्रबल अपील की थी कि- ''जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्यसमाज आर्य्यावर्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।''

आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार

भारत के उत्कर्ष की झाँकी इतिहास के पृष्ठों में अपनी कथा स्वयं कहती है। ऋषि दयानन्द ने एकादश समुल्लास के अंक में जो वंशावली दी है उससे इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। विद्वान् लेखक ने इसी पर सविस्तार सामग्री प्रस्तुत की है। -सम्पादक

''वयं प्रजापते प्रजा अभूमः''

कार्ल मार्क्स और महर्षि दयानन्द समसामयिक थे। दोनों एक नये समाज का निर्माण करना चाहते थे। एक के सामने एक विशिष्ट वर्ग का उद्धार था। दूसरे के सामने लक्ष्य था, परमात्मा का राज्य स्थापित करना। ऋषि किसी वर्ण विशेष और व्यक्ति विशेष का नहीं परमात्मा का राज्य इस लोक पर स्थापित करना चाहते थे। क्योंकि ऋषि ने छठे समुल्लास के अन्त में लिखा है।

''हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर को प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।''

राज्य के विषय में ऋषि की कल्पना का सूक्ष्म तत्त्व इसमें विद्यमान है।

इसके बाद ११ वें समुल्लास के अन्त में ''न वेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्ष'' श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं। ''इसके आगे जो थोड़ा-सा आर्यराजाओं का इतिहास मिला है, इसको सब सज्जनों को जानने के लिये प्रकाशित किया जाता है।''

स्पष्ट है, ऋषि सम्पूर्ण इतिहास नहीं लिख रहे हैं। यहाँ आर्यराजाओं का शब्द ध्यान देने योग्य है। महर्षि भारतवर्ष के सब राजाओं का नहीं, 'केवल आर्यराजाओं' का प्राप्त इतिहास प्रकाशित कर रहे हैं।

'आर्यराजाओं से ऋषि का क्या अभिप्राय है, इसको विशद करते हुए ऋषि ने लिखा है।'

अब थोड़ा-सा आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश कि जिसमें

श्रीमान् महाराजा युधिष्ठिर से लेके महाराज 'यशपाल' पर्यन्त हुए हैं, उस इतिहास को लिखते हैं। और श्रीमान् महाराजे "स्वायंभुव" मनु से लेके महाराज युधिष्ठिर पर्यन्त का इतिहास महाभारत आदि में लिखा ही है और इससे सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्तमान विदित होगा।

ऋषि ने जो इतिहास दिया है, वह हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित) और मोहन चन्द्रिका (नाथद्वारा) से लेकर दी है बल्कि "उससे हमने अनुवाद किया है। यह इतिहास १७८२ की लिखी एक प्राचीन पुस्तक से लिया गया है।" उस पुस्तक ओर उसके रचयिता का नाम नहीं दिया गया है।

दो पाक्षिक पत्रों से अनुवाद करके अपने अनमोल सिद्धान्त-ग्रन्थ में ऋषि ने राजवंशावलियाँ क्यों दीं, यह भी जानने योग्य है। ऋषि ने लिखा है "यदि ऐसे ही हमारे आर्यसज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोजकर प्रकाश करेंगे, तो देश को बड़ा ही लाभ पहुँचेगा" महर्षि की यह इच्छा अपूर्ण ही रही। इसने ऐतिहासिक गवेषणा और प्राचीन पुस्तकों की खोज के कार्य को आगे नहीं बढ़ाया।

१७८२ की लिखी मूल पुस्तक को ऋषि ने देखा होगा और उसके प्रामाणिक होने पर ही ऋषि ने ११ वें समुल्लास में १२४ राजाओं की सूची दी है। इनका राज्यकाल ४१५७ वर्ष ९ मास १४ दिन होता है।

ऋषि का यह सप्रमाण उन लोगों को उत्तर है, जो उस समय प्रचार कर रहे थे कि महाभारत का युद्ध ५००० साल पहले नहीं हुआ। यहाँ ध्यान देने की बात है कि वेदों के काल के विषय में मैक्समूलर का मत बाद में जो बदला वह ऋषि के साथ पत्र-व्यवहार करने के बाद। परन्तु, उसने जो लिखा कि ऋग्वेद का काल ई. से १२०० वर्ष पहले है, उसने अपना काम कर दिया। आज भी यह उद्धृत किया जा रहा है। इसको मानने का अर्थ है कि भारतीय जनता और ज्योतिष की यह मान्यता कि महाभारत का युद्ध ५००० साल पहले हुआ है, सर्वथा भ्रमात्मक है। यह मानने पर इस देश के लोग सर्वाधिक प्राचीन और सभ्य होने का गौरव कैसे करते? ऋषि ने यह वंशावली देकर भारतीयों के गौरव और स्वाभिमान को जागृत ही नहीं किया है उसको एक प्रामाणिक आधार पर खड़ा किया है।

भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए ऋषि ने एक नवीन दृष्टि दी है। भारतीय इतिहास को प्रान्तों व जनपदों के इतिहास में विभक्त न कर सम्पूर्ण देश के इतिहास को एक केन्द्रीय बिन्दु से अध्ययन करना चाहिये। ऋषि ने इन्द्रप्रस्थ को केन्द्रस्थल माना है, क्योंकि यहाँ राजसूय यज्ञ हुआ था। यद्यपि परीक्षित को राजधानी हस्तिनापुर थी। गंगा में बाढ़ आने पर पुरुवंश कोशाम्बी चला गया था। भगवान् बुद्ध के समय भारत के बड़े राजाओं में उदयन भी एक था, जिससे बौद्ध लोग बहुत नाराज थे। एकमात्र इस आर्यराजा ने बुद्ध के चरणों में अपना मस्तक नत नहीं किया था। उदयन एक लोकप्रिय शासक हुआ है। पर ऋषि की इस वंशावली में उसका नाम नहीं है। कारण स्पष्ट है, वह इन्द्रप्रस्थ छोड़ गया था।

यूरोपियन और अब भारतीय ऐतिहासिक भी भारतीय ज्ञान इतिहास का आरम्भ सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने से करते हैं (वि. स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया' में इससे ही किया है। अब मोहनजोदड़ो से किया जाने लगा है। किन्तु उसको आर्यसभ्यता का अंग नहीं माना जाता।

इस वंशावली में और एक बात उल्लेख योग्य है। भारत के राजा दिल्ली का राज्य पाने के लिये सदा प्रयत्नशील रहे। वे सब मानते थे कि दिल्ली का राजा होने पर ही उनकी प्रतिष्ठा होगी और वे भारत भर के राजा माने जायेंगे। यह प्रवृत्ति ध्यान देने योग्य है। पटना, काशी, कौशाम्बी और अवन्तिका, उज्जैन दिल्ली का स्थान न ले सके। जो गौरव इस देश के निवासियों के हृदय में दिल्ली के लिये था, वह अन्य राजधानियों के लिये नहीं था।

राजा वीरमहा के राजवंश में १६ वाँ और अन्तिम राजा आदित्यकेतु था। इस राजा के विषय में लिखा गया है कि "राजा आदित्यकेतु मगध देश के राजा को धंधर नामक प्रयाग के राजा ने मारकर राज्य किया।" पटना, प्रयाग की यह लड़ाई इन्द्रप्रस्थ के राज्य के लिये है। आदित्यकेतु मगध का भी शासक था और दिल्ली का भी। यह एक नई बात ज्ञात होती है। मगध के ज्ञात राजाओं में आदित्यकेतु

नामक किसी राजा का पता नहीं मिलता। सम्भव है यह वीरसेन का पुत्र न हो और मगध की ओर से इन्द्रप्रस्थ का गवर्नर नियुक्त किया गया हो। लेकिन यह अनुसन्धान का विषय है। राजा धंधर प्रयाग का राजा था यह भी गवेषणीय है। धंधर ने दिल्ली में अपना वंश स्थापित किया। इसके अन्तिम राजा राजपाल को सामन्त महानपाल ने मार दिया। किन्तु इसका राज्य अधिक दिन टिका नहीं। क्योंकि अवन्तिका के राजा विक्रमादित्य ने महानपाल को मार दिया। अवन्तिका को उज्जैन नहीं मानना चाहिये। ये दो पृथक्-पृथक् नगर थे। मालवा के दो भागों की राजधानियाँ थीं।

विक्रमादित्य भी स्थायी नहीं हो सका। ये सब एक पीढ़ी के राज्य रहे। वंशावली लेखक ने भी लिखा है ''इनका विस्तार नहीं है।''

विक्रमादित्य को पैठण के शालीवाहन के उमराव समुद्रपाल ने मारा और अपना राजवंश चलाया। पैठण के एक उमराव की दिल्ली का राज्य पाने को इच्छा बताती है कि दिल्ली का भारतीय जनता के मन में क्या स्थान था। मगध, अवन्तिका और पैठण की दिल्ली के प्रति यह भक्ति अकारण और केवल राज्य-विस्तार की इच्छा से नहीं हो सकती। दिल्ली का राजा सारे देश का राजा माना जाता था। यह परम्परा और भावना तो मुगलों के समय तक ही क्यों, अंग्रेजों में भी जारी रही।

यह अनुभूति पश्चिम के एक राजा मलुखचन्द (बोहरा) को भी थी। इसने लड़ाई में विक्रमपाल को मार कर इन्द्रप्रस्थ का राज्य पाया। ऋषि दयानन्द ने दिल्ली नरेशों को ही आर्यराजा कहा है। इसका विशेष कारण है। मलुखचन्द्र की १० वीं पीढ़ी में रानी पद्मावती ने राज्य किया वह नि:सन्तान थी। इस समय सब मुत्सद्दियों ने सलाह करके हरिप्रेम को राजा बनाया। हरिप्रेम के राजा चुनने की विधि ध्यान देने के योग्य है। दूसरी बात यह है कि हरिप्रेम का प्रपोता महाबाहु राज्य छोड़कर वन में तपस्या करने चला जाता है और कालिदास के इस आदर्श को पूरा करता है।

वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां, योगे नान्ते तनुत्यजाम्।

दिल्ली नरेश आर्य आदर्शों पर चलते थे और ऋषि ने इसी कारण सम्भवत: निर्बल और प्रभावहीन राजाओं की नामावली देना उचित नहीं समझा है। मुस्लिम शासन ने आर्य संस्कृति को कितना भारी आघात पहुँचाया है इसकी कल्पना क्या इसके बिना हो सकती थी? ऋषि ने यह बात नहीं कही। पर जो लोग मुस्लिम शासकों को भारतीय और राष्ट्रीय मान रहे हैं उनको अवश्य चेता दिया है। जो व्यक्ति भारतीय संस्कृति के विपरीत चलता है, वह कैसे राष्ट्रीय माना जा सकता है?

महाबाहु के वन में जाने पर बंगाल के राजा अधिसेन ने दिल्ली पर हमला किया। बंगाली नरेश दिल्ली को किस दृष्टि से देखते थे, यह इससे स्पष्ट है। बंगाल में पालवंशी राजाओं के बाद सेनवंशी राज्य हुये हैं। लक्ष्मणसेन का नाम प्रसिद्ध है। इस वंश से क्या अधिसेन का कोई सम्बन्ध था? यह पक्का पता नहीं। क्योंकि बंगाल के सेनवंशी राजाओं में अधिसेन का नाम उल्लिखित नहीं है, परन्तु इन सब राजाओं का नामान्त सेन से ही हुआ है, सिंह से नहीं। इससे यह तो मानना होगा कि अधिसेन बंगाल का ही था। एक बात और उल्लेख योग्य है। दिल्ली के पास लोहे की कीली है। यह ढिल्लु की लगाई बताई जाती है। लेकिन इस राजवंशावली में इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं है। ऋषि की दी गई वंशावली से और दो बातें भी मालूम होती हैं।

दिल्ली का राजा अनंगपाल नाम का कोई नहीं हुआ। 'पाल' नामवाले १२ राजा हुए हैं, परन्तु उनमें अनंगपाल का नाम नहीं। दूसरी बात यह कि पृथ्वीराज ने जब दिल्ली की गद्दी ली तो नाती होने के नाते प्राप्त नहीं की, अपितु राजा जीवनसिंह से प्राप्त की। पृथ्वीराज अजमेर का नहीं था, जैसेकि प्रसिद्ध ऐतिहासिक और राजपूताना के इतिहास के लेखक श्री गौरीशंकर हीराचन्द ने भी माना है जब पृथ्वीराज ने दिल्ली की गद्दी लड़कर प्राप्त की थी, तब कन्नौज के जयचन्द्र से विरोध होने का कोई कारण नहीं हो सकता। अनंगपाल के इन दोनों नातियों में दिल्ली को लेकर बैर हुआ, यह इस वंशावली से सत्य प्रमाणित नहीं होता (४) पृथ्वीराज इसमें वैराट का राजा बताया गया है, अजमेर का नहीं। चौहाण कुल आज भी बड़ी संख्या में सहारनपुर और बिजनौर जिले में बसे हुए हैं। इनकी कुलदेवी शाकमारी (वैराट) के ही शिकसन पर्वत के पास है।

सिकन्दर के आक्रमण के समय भी ये लोग यहाँ ही बसे हुए थे। इसलिए पृथ्वीराज का वैराट से आकर दिल्ली लेना अधिक स्वाभाविक है। 'पृथ्वीराज रासो' की कथा इसको मानने में बाधा है, परन्तु पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता ही जब संदिग्ध है, तब उसको आधार मानना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। (५) शाहबुद्दीन गौरी की लड़ाई पृथ्वीराज से नहीं हुई, यशपाल से हुई। यह सर्वथा एक नई बात है। स्कूल की किताबों तक में यह पढ़ाया जाता है। अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज था, परन्तु सत्यार्थप्रकाश में दी गई वंशावली से पता चलता है कि पृथ्वीराज के वंशधरों ने ५ पीढ़ी और ८६ वर्ष राज्य किया (६) यशपाल गजनी नहीं ले जाया गया, बल्कि प्रयाग के किले में कैद रखा गया। (७) यशपाल के बाद शाहबुद्दीन गौरी ने राज्य किया। ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं "पश्चात् इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुल्तान शहाबुद्दीन) करने लगा । पीढ़ी ५३, वर्ष ७४५ मास १ दिन १७।"

पुस्तक १७८२ में लिखी गई। इसका अर्थ है कि १८३६ में ब्रिटिश राज्य पूरी तरह स्थापित हो गया था। वह दिल्ली के मुगल नरेशों को स्वतन्त्र नहीं मानता था। इस वास्ते प्रश्न होता है कि ५३ पीढ़ी की गणना उसने किस हिसाब से की।

स्वामी जी ने जो वंशावली दी है, उसकी प्रामाणिकता इससे प्रकट है कि इस वर्ष कांगड़े की एक पुराने पुस्तकालय से प्राचीन किताब मिली है। उसमें जो वंशावली दी गई है, यह और सत्यार्थप्रकाश में दी गई राजवंशावली में एक दो-नामों को छोड़कर कोई अन्तर नहीं है। इसलिये ऋषि दयानन्द का यह लिखना कि वे इसको और अनुसन्धान करने के लिये दे रहे हैं, सर्वथा उपयुक्त है। आज जो इतिहास पढ़ाया जा रहा है, उससे यह भिन्न है। पृथ्वीराज रासो की अनैतिहासिकता इससे स्पष्ट है।

शाहबुद्दीन गौरी ने यहाँ कुछ वर्ष राज्य किया या, यह तो मुस्लिम ऐतिहासिक लेखक भी मानते हैं, परन्तु वह गजनी में गड़बड़ी होने पर बुला लिया गया था। उसके बाद गुलाम वंश का राज्य शुरू हुआ। यहाँ कड़ी टूटती नहीं, केवल बदलती हैं। कुतुबमीनार के निचले भाग में संस्कृत के लेख हैं। उनको फिर से पढ़ना चाहिये। इससे ज्ञात होगा कि इस मीनार का निर्माता वस्तुतः पृथ्वीराज ही है, या उसका कोई वंशज। यदि उसका कोई वंशज हो तो उससे ऋषि की कही बात की प्रामाणिकता से अभिवृद्धि होगी और भारत का अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज नहीं यशपाल माना जायेगा।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

वैदिक मनीषी आचार्य डॉ धर्मवीर जी
जैसा मैंने जाना

डॉ. रामचन्द्र

.....आज चार वर्ष हो गये हैं, धराधाम से उनके परलोकगमन को। वैदिक-विद्या और वैदिक-जीवन पद्धति को व्यवहार में जीने वाला उनके समकक्ष कोई दूसरा व्यक्तित्व मेरे दृष्टिपथ में अवतरित नहीं हुआ। उनकी वाणी में वेदमन्त्रों के गूढ़ रहस्य मानो सहज रूप से अवतरित होते थे। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के दर्शन का सौभाग्य हमें नहीं मिला, पर आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के श्रीमुख से ऋग्वेद के सूक्तों की भावभरित और अनुभूति से पूरित व्याख्या सुनकर ऋषियुग के द्रष्टा तो हम बन ही गये। उन्हें उपनिषदों की सहस्रश: पंक्तियाँ कण्ठस्थ थीं। दर्शन शास्त्र की गुत्थियाँ उनके सान्निध्य में स्वत: खुल जाती थीं। निरुक्त और मनुस्मृति को लोकजीवन से जोड़कर पढ़ाने का उनका अपना अलग ही अन्दाज था। यज्ञवेदी पर उनकी उपस्थिति प्रत्येक व्यक्ति में अकल्पनीय आह्लाद उत्पन्न कर देती थी। सभा और संगोष्ठियों में उनकी उपस्थिति आम से खास को, सहृदय से शास्त्रार्थी को, पक्ष और प्रतिपक्ष को, यहाँ तक दीवारों को भी स्थिरचित्त कर देती थी।

परोपकारी पत्रिका उनके व्यक्तित्व के अलग और बहुआयामी व्यक्तित्व के पर्याय के रूप में समाज में चर्चित रही। उनके सम्पादकीय को पढ़ने के लिए लोगों में अवर्णनीय लालसा रहती थी। भारत के यशस्वी प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी भी उनके सम्पादकीय के पाठक रहे हैं। वे जो लिखते थे, प्रामाणिक, ठोस और बेबाक लिखते थे। समाज, शिक्षा, राष्ट्र, वैश्विक समस्या आर्यसमाज जैसे असंख्य विषयों पर उनकी लेखनी ने इन सम्पादकीय आलेखों के माध्यम से कालजयी जीवन दर्शन दिया है। यह प्रसन्नता का विषय है कि परोपकारिणी सभा ने उनके महत्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों को ग्रन्थ रूप में प्रकाशित किया है।

वे चलता-फिरता पुस्तकालय और गुरुकुल थे। अजमेर में ऋषि उद्यान की पावनधरा पर महर्षि दयानन्द के शिक्षा-दर्शन को व्यावहारिक रूप देने के लिये उन्होंने गुरुकुल स्थापित किया। जहाँ अन्य तपस्वी, वीतराग आचार्य जन वहाँ पर अन्तेवासियों को विद्यादान करते थे वहीं स्वयं आचार्य धर्मवीर जी भी उपनिषद्, मनुस्मृति, निरुक्त एवं वैदिक सूक्तों का अध्यापन करते थे। उनके पढ़ाने पर शास्त्र हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता था। विद्यार्थी भी कृतार्थ हो जाते थे।

परोपकारिणी सभा को महर्षि दयानन्द ने अपनी उत्तराधिकारिणी सभा के रूप में स्थापित किया था। पर यह सभा शताधिक वर्षों तक अपने गौरव के अधिकार को पाने की लालसा में ही जीती रही। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के स्पर्श ने इस सभा को अन्वर्थक रूप में दयानन्द की उत्तराधिकारिणी बनाया और इसे जागतिक प्रतिष्ठा एवं गौरव दिलाया।

उनके सन्दर्भ में लिखने को इतना कुछ है कि एक ग्रन्थ का प्रबन्ध तैयार हो जाये। उन्होंने समाज , राष्ट्र और विशेष रूप से आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा के लिए इतना मूल्यवान योगदान दिया है कि आने वाले युगों तक उनका जन-मन में गुणगान होता रहेगा।

मुझे निजी रूप से दो दशक से अधिक समय तक उनका सान्निध्य, सहयोग, मार्गदर्शन और आशीर्वाद मिला। मुझ अकिंचन की झोली उनके आशीर्वाद से भर गई। वे तो समुद्र थे, मेरा ही लोटा छोटा था। आज भी हर अन्धेरी गली में उनका प्रकाशदीप ही मेरा पथ प्रशस्त करता है।

वेद विद्या के महाधन यशस्वी आचार्य को पुण्यतिथि पर शत शत नमन और विनम्र श्रद्धाञ्जलि......

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इंस्टीट्यूट ऑफ इंटीग्रेटेड एण्ड ऑनर्स स्टडीज़, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

राजा और प्रजाजन परस्पर सम्मति से समस्त राज्य व्यवहारों की पालना करें। **-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ६.२६**

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

आचार्य नरदेव शास्त्री जी वेदतीर्थ

हमारी संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं, जो अन्य धर्मों में नहीं पायी जातीं। अनन्तकाल के प्रवाह से हमारी जाति में एक ऐसा रक्त-प्रवाह बह रहा है, जिस प्रवाह को अब तक कोई नहीं रोक सका। एक सहस्र वर्ष की दासता, परचक्र, सैकड़ों उलट-फेर भी न रोक सके। चाहे कुछ भी हुआ, कुछ भी देखना पड़ा, पर हमारी जाति में निम्नलिखित गुण तो किसी न किसी रूप में रहे ही हैं।

आस्तिकता- चाहे हम अपने पूर्वजों- जैसे उत्कृष्ट कोटि के आस्तिक न रहे हों, तथापि आस्तिक रहे हैं अवश्य, आस्तिक हैं अवश्य और आस्तिक रहेंगे अवश्य। नहीं तो, इतनी बड़ी सुदीर्घकालीन दासता में हम जीवित ही कैसे रह सके, यही आश्चर्य है।

इस हमारी अस्ति-बुद्धि को कोई नहीं मिटा सका। हमारे अन्दर ईश्वर-विश्वास बराबर बना रहा। इस संसार का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता कोई अवश्य है, जिसके संकेतमात्र से ही त्रिभुवन तथा लोक-लोकान्तर बनते हैं, बने रहते हैं और अन्त में बिगड़ जाते हैं। उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक की गाथा न जाने कब से चली आयी है। उस परमात्मा के अभिध्यानमात्र से प्रलय में बिखरे पड़े हुए अनन्त परमाणुओं में जीवन-संचार होने लगता है। प्रलयावस्था में पड़ी हुई मूल-प्रकृति विकृति की ओर चल पड़ती है और अन्त में यह विराट् जगत् बनता है-

श्वेताश्वतर-उपनिषद में स्पष्ट कहा है कि ऋषियों ने ध्यानावस्थित होकर साक्षात्कार किया-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।।

हमारी हिन्दू-जाति, आर्य-जाति, उसी सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा, सर्वभूतनिगूढ़ देव में विश्वास रखती चली आयी है। यह और बात है कि उसको जानने के अनेक उपाय वेदों में, स्मृतियों में, धर्म-शास्त्रों में बतलाए गए हैं। भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से प्रवृत्त हुए दर्शनशास्त्र भी अन्ततोगत्वा उसी की बात पर एकमत हो जाते हैं- यह एक हिन्दू-जाति की विशेषता है और इसी विश्वास के आश्रय से यह जीवित रही है।

मोक्ष- जीवन का विशेष उद्देश्य- दूसरी एक विशेषता इस विश्वास की रही है कि जीवों के इस संसार में आने का विशिष्ट उद्देश्य है और इस जगत् के बनने-बिगड़ने का भी एक विशिष्ट उद्देश्य है वह है- **भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**। (योग.) यह दृश्य-जगत् इसीलिए बना है कि जीव अपने-अपने कर्म-फलानुसार इस संसार में आवें, कर्म-फलों को भुगतें और प्रयत्न करते-करते अपवर्ग तक पहुँचें। यद्यपि अपवर्ग (मोक्ष) प्रत्येक के बूते की वस्तु नहीं है, तथापि पहुँचने वाले वहाँ पहुँच ही जाते हैं-कितने? कौन कह सकता है, कब? कौन कह सकता है-

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।

की बात सर्वविदित ही है। जीव अपने कर्मानुसार विविध योनियों में होकर अन्त में मनुष्ययोनि में आकर, यहाँ से प्रयत्न करते-करते अपवर्ग तक पहुँच जाते हैं। उत्तम आचरणवाले उत्तम योनियों को प्राप्त करते हैं, निकृष्ट आचरणवाले निकृष्ट योनियों को। इस सिद्धान्त को हम मानते चले आये हैं। यही कारण है कि हम किसी भी दशा में रहें, किसी भी दशा में पहुँचें, समाधानपूर्वक कर्मफलों को भुगतने की मनोभूमिका रखते हैं-इस जाति के जीवित रहने का दूसरा यह कारण है।

ईश्वरीय न्याय में विश्वास- तीसरी विशेषता यह रही है कि हम ईश्वरीय न्याय में अटल विश्वास रखते चले आये हैं। हम पर कैसी भी बीती, हम इसी विश्वास पर अधिकतर जीवित रह सके हैं। ये दुःख क्यों आये? अपने कर्मों का फल।

यही हिन्दूजाति की मनोभावना रही है। हमने अपने कर्मानुसार प्राप्त सुख-दुःखों के लिये अन्य किसी को दोष देने की बात सीखी ही नहीं।

कर्मफल पर विश्वास- चौथी विशेषता अपने कर्मफल पर दृढ़ विश्वास की है। जब हमने अच्छे अथवा

बुरे कर्म किये हैं, तब इनका फल हमको छोड़कर दूसरा कौन भुगतेगा, यह बात हमारी जाति की हृदयान्तरतल में गड़ी हुई है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

फलदाता वही परमकारुणिक भगवान हैं, जिनके न्याय में भी दया रहती है। इसीलिये हिन्दूजाति में किसी के सुख को देखकर डाह नहीं होता, बल्कि दूसरे के दु:खों को देखकर उसमें करुणा उत्पन्न होती है।

प्राणिमात्र में आत्मदर्शन- हिन्दूजाति की पाँचवीं विशेषता यह है कि वह सब प्राणियों में आत्मैकत्व को देखती रही है। इसका फल यह हुआ कि हिन्दू अन्यों के सुख-दु:खों को भी अपने सुख-दु:खों की दृष्टि से देखता चला आया है। गीता में भी इसी समबुद्धि पर बल दिया गया है। हिन्दूजाति जीवों की ऊपरी विषम दशा को देखकर कभी नहीं घबराती। यह तो अन्तरात्म-समता की दृष्टि रखती रही है।

सारांश हमारी हिन्दूजाति कौड़ी मूल्य की नहीं रहती, यदि उसमें यह अध्यात्म-दृष्टि, सर्वभूतैकत्व अथवा सर्वात्मैकत्व की दृष्टि न रहती। वर्तमान आध्यात्मिकता शून्य दृष्टिवाले एकमात्र भौतिक उन्नति में लोलुप पाश्चात्त्य राष्ट्र अथवा पाश्चात्त्य मिशनवादी यहीं तो भूलते हैं और केवल आपातरम्य जगत् पर दृष्टि डालकर सबको सम-समान बनाने की बात कहते रहते हैं। इनके पास भीतरी समता को देखने के लिए न आँखें हैं न और कुछ। इसीलिये कोरा विज्ञान, अध्यात्मशून्य विज्ञान भी इनको नहीं तार रहा है। नारद क्या कम विज्ञानी थे? किन्तु आत्मतत्त्व को जानकर ही सुखी हुए। आत्मज्ञान के बिना उनकी सब विद्याएँ, ज्ञान-विज्ञान निरर्थक सिद्ध हुए। पाश्चात्य विज्ञानवादी सांसारिक तुच्छ पदार्थों में ही सुख मान रहे हैं और अध्यात्मदृष्टि के न रहने से-

ये वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य:। (छान्दोग्य.)

इस भूमातत्त्व (आत्म-परमात्मतत्त्व) को न जानकर भटक रहे हैं। अन्त में भटक-भटककर इनको भी हमारे मार्ग पर ही आना पड़ेगा।

फिर प्रश्न हो सकता है कि हिन्दू-जाति में ऐसे-ऐसे गुण थे तो एक सहस्र वर्ष पर्यन्त दास्यपङ्क में क्यों फँसी रही? उत्तर यह है कि ईश्वर ने किसी जाति को कोई किसी प्रकार का ताम्रपट्ट तो दे नहीं रक्खा कि वही जाति संसार में सदैव के लिए सर्वोपरि रहेगी। जलयन्त्र चक्रवत् (रहट) उन्नति तथा अवनति के चक्र नीचे-ऊपर होते ही रहते हैं। इस नियम का हमारी हिन्दू जाति ही अपवाद क्यों बनी रहती।

हमारा धर्म केवल नि:श्रेयस की बात नहीं कहता और न केवल भौतिकवाद की बात ही कहता है। हमारे ऋषि तो कहते हैं कि जिससे अभ्युदय और नि:श्रेयस- दोनों की सिद्धि हो, वह धर्म है।

हम स्वतन्त्र हुए सही, अब इस स्वतन्त्रता के आश्रय से हमें पुन: इस भारत में भारतीय ढंग की संस्कृति लानी है। इसीलिये वर्तमान राज्य-प्रणाली में भी देश-काल-धर्मानुरूप कतिपय अभीष्ट परिवर्तन करने पड़ेंगे।

वर्तमान पाश्चात्त्य प्रजातन्त्र-प्रणाली का अनुकरण युगधर्म हो सकता है, पर उसका भारत में अन्धानुकरण करके हम सुखपूर्वक जीवित न रह सकेंगे।

जिस युग में हम विचर रहे हैं, वह एक संक्रमणात्मक युग है, जिसमें स्थिरता भी नहीं, गम्भीरता भी नहीं। एक शिक्षा की ही बात लीजिये-

वर्तमान समय में जिस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है, उससे भारत का चरित्र कभी सुधरेगा- ऐसी आशा रखना दुराशामात्र है। मुझ-जैसे प्राचीन शिक्षाभिमानी को इस युग में यह प्रतीत हो रहा है कि अन्धकार ने प्रकाश को ललकारा है कि- 'आ, जरा ठहर, तेरी खबर लूँ। अब तक तो तूने मुझे बहुत परेशान कर रखा था और संसार में मुझे छिपने के लिए स्थान तक नहीं छोड़ा था। अब इस युग में तेरे लिए कोई स्थान नहीं छोड़ूँगा।' ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रकाश अपने प्राण बचाकर भाग रहा है और अन्धकार उसका पीछा कर रहा है। यदि भारत में भारतीयता का अन्त हो गया तो हम स्वतन्त्र होकर भी स्वस्वरूप को भूलकर क्या जीवित रहेंगे?

भारत का नाम बिगड़ जाय और रूप भी बिगड़ जाय- तो नाम रूप दोनों के बिगड़ जाने से भारत का क्या शेष रह जायेगा। अब तक तो भारत का किसी प्रकार नाम

चला आ रहा है। रूप तो सहस्र वर्ष से विकृत होता चला आ रहा है। अब इस विकृत रूप को मिटाकर पूर्ववत् सुन्दर-मनोहारी रूप बनाने के लिये समस्त प्रयत्न होने चाहियें।

पर क्या किया जाय। कभी यह वर्तमान प्रजातन्त्र-प्रणाली प्रत्यक्षरूप में अथवा स्पष्टरूप में आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति, आर्यसभ्यता की पोषक और पालक बन सकेगी, ऐसी आशा करना दुराशामात्र होगी। जब शिक्षा-संस्थाओं में ही धर्मशिक्षा को प्रतिष्ठित अधिष्ठान नहीं मिल रहा है, तब क्या होगा- यह एक चिन्तनीय विषय बन गया है। जब छात्र-छात्राओं की सह-शिक्षा का अनर्थकारी परिणाम भी हमारी समझ में नहीं आ रहा है, तब क्या कहा जाय? जबकि गोहत्यानिषेध की बात भी अब तक हमारी समझ में नहीं आ रही है, तब क्या समझा जाय कि हम किधर जा रहे हैं? हम लोग आज यदि भारतीय धर्म का अध्ययन करते हैं, तो पाश्चात्त्य-दृष्टि से करते हैं। भारतीय धर्म की उत्तमता स्वीकार करने के लिये भी हमें पाश्चात्त्य-दृष्टि चाहिये। भारतीयों के रोगों की औषधियों के भारत में रहते भी हम पाश्चात्त्य औषधियों को मगाँने में करोड़ों रुपये खर्च करते हैं, तब तो बड़ा विस्मय होता है। महात्मा गाँधी जी जीते-जी महाघोष कर गये कि मशीन युग को समाप्त करो, पर हम करोड़ों रुपये मशीनों पर लगाते ही चले जाते हैं। राज्यशासनचक्र अभी तक विलायती ढंग के ही हैं- खाली, उनको चलानेवालों के गोरे हाथ बदलकर हमारे काले हाथ लग रहे हैं।

एक ओर बेकारी-बेकारी चिल्लाते हैं, दूसरी ओर स्कूल-कॉलेज और विश्वविद्यालयों द्वारा-अस्वाभाविक, अभारतीय, अनुपयोगी शिक्षा द्वारा बेकारी को बढ़ाते ही चले जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक हमारे भारतीय नेता शिक्षा की जटिल समस्याओं को सुलझाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। वैसे ये नेता एकस्वर से वर्तमान शिक्षा-दीक्षा की बुराई करते हुए सुने जाते हैं।

फिर क्या निराशा ही निराशा है? आशा के संचार के लिये स्थान नहीं है? -

है क्यों नहीं, जिस करुणानिधान भगवान् ने स्वतन्त्रता दिलाई, वही आगे भी वर्तमान परिस्थितियों के रहते हुए भी उन्हीं में से ऐसी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न करेगा, जिससे भारत अपने अभीष्ट पथ की ओर अग्रसर होता जायगा। इस कार्य में देर अवश्य है, पर अन्धेर नहीं। भारतवर्ष की धर्मप्राण जाति को इस कार्य में अपेक्षित त्याग-तपस्या करनी ही पड़ेगी। संस्कृत के विद्वान् , जिन्होंने आज तक संस्कृत-विद्या के रक्षार्थ कुछ परम्परा द्वारा प्रयत्न किये, उनको पुन: एक बार त्याग-तपस्या का मार्ग अपनाना पड़ेगा, तब कहीं संस्कृत विद्या की रक्षा हो सकेगी। हमारी सरकार के पास अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के लिए करोड़ों, अरबों रुपये हैं, पर संस्कृत के लिये-जिसके आश्रय से आज तक भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता जीवित रही- पैसा नहीं है, संस्कृत-विद्या के लिये आस्था नहीं, श्रद्धा नहीं। हमारे ही उत्तर प्रदेश में धनाभाव के कारण लगभग १५०० संस्कृत पाठशालाएँ तथा विद्यालय आधे मुरझा गये हैं। काशी, जो कि किसी समय संस्कृत-विद्या का गढ़ था, अब वह भी मुरझा चला है। जब संस्कृत के केन्द्र ही मुरझा रहे हैं, तब भारतीय संस्कृति ही कहाँ रहे और कहाँ श्वास-प्रश्वास ले- **धर्मो रक्षति रक्षितः** - यही सत्य है।

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

(व्य. भा.)

मोक्ष से पुनरावृत्ति पर जन्म- एक सामायिक चर्चा

डॉ. सत्यप्रकाश गुप्त

परोपकारी के फरवरी २०१६ (द्वितीय) के अंक में पृष्ठ सं. ३२ पर बहन सुश्री सुमित्रा आर्या ने अपनी जिज्ञासा के समाधान में एक शङ्का व्यक्त की थी। उनकी शङ्का थी कि ''जब जीवात्मा श्रेष्ठ ज्ञान, कर्म, उपासना अथवा योगबल से मोक्ष प्राप्त करके ईश्वर के साथ आनन्द भोगता है फिर अवधि पूर्ण होने पर वापस संसार में आकर एक सामान्य परिवार में जन्म लेता है, जब-कि उसने तो श्रेष्ठ ज्ञान, कर्म, उपासना की है, उसे तो श्रेष्ठ तथा धार्मिक उच्चकुल में जन्म मिलना चाहिये। कृपया शङ्का दूर कीजिये।''

उपर्युक्त शङ्का का समाधान निम्नवत् किया गया था।

मुक्ति निष्काम कर्म करते हुए विशुद्ध ज्ञान से होती है। जब जीवात्मा संसार से विरक्त होकर निष्काम कर्म करते ज्ञान अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को पृथक्-पृथक् समझ लेता है और अपने विवेक से अन्दर के क्लेशों को दग्ध कर शुद्ध हो जाता है, तब मुक्ति होती है। जब मुक्ति की अवधि पूरी हो जाती है, तब जीव को परमेश्वर संसार में जन्म देता है अर्थात् शरीर धारण कराता है। इस शरीर के मिलने पर आत्मा मुक्ति की अवस्था जैसा ज्ञानी नहीं रहता। उसे जन्म भी सामान्य मनुष्य का मिलता है अर्थात् सामान्य परिवार, सामान्य शरीर, सामान्य बुद्धि, सामान्य इन्द्रियाँ आदि। इसमें सिद्धान्त यह है कि जीवात्मा ने जिन श्रेष्ठ ज्ञान, कर्म, उपासना आदि को किया था उनका श्रेष्ठ फल मुक्ति के रूप में भोग चुका है, उसके पास अब श्रेष्ठ ज्ञान, कर्म, उपासना नहीं रहे, अब वह अपनी सामान्य स्थिति में आ गया है। इसलिए उसको सामान्य मनुष्य का जन्म मिलता है।

उक्त शङ्का का समाधान करते हुए वेद अथवा अन्य आर्ष ग्रन्थों का कोई सन्दर्भ नहीं दिया गया है। केवल एक लौकिक उदाहरण द्वारा कथन को पुष्ट करने का प्रयास किया है। किसी के पास एक हजार रुपये हैं, उन्हें खर्च करने पर उसको हजार रुपये की वस्तु मिल जाती है अर्थात् उसने एक हजार रुपये का फल प्राप्त कर लिया। यह खर्च होने पर उसको फिर से एक हजार का फल नहीं मिलेगा।

इस उदाहरण से रुपयों के रूप में द्रव्य को कमाने का आदि (आरम्भ) है और उसे व्यय कर देने पर उसका अन्त (समाप्त) होना स्पष्ट है। जबकि जीव और जीवों के कर्म अनादि शास्त्रोक्त सिद्ध हैं। बिना किसी प्रकार के भोग (सुख-दुःख) अर्थात् कारण (कर्म) बिना कार्य (जन्म) नहीं हो सकता। जीव के कर्म कभी भी समाप्त नहीं होते, उनके अनादि होने के कारण महर्षि दयानन्द लिखते हैं- ''जीव, जीवों के कर्म और स्थूल कार्यजगत् ये तीनों अनादि हैं।'' (ऋ. भा. भूमिका-वेदोत्पत्ति विषय) इसी सम्बन्ध में महर्षि का भाष्य भी अवलोकनीय है। ''अग्नेर्वयं प्रथमस्या...च दृशेयं मातरं च।'' (ऋ. १/२४/२)। भाष्य की अन्तिम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं ''मोक्ष पदवी को पहुँचे जीवों का महाकल्प के अन्त में फिर पाप-पुण्य की तुल्यता से पिता-माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्य जीवन धारण करता है।'' इस भाष्य में महर्षि जीवों के पाप-पुण्य कर्मों के आधार पर ही मनुष्य जीवन धारण करने का कथन कर रहे हैं। इससे भी कर्मों का अनादि होना सिद्ध है।

न्याय का सिद्धान्त भी यही कहता है कि कोई भी कर्म बिना भोगे समाप्त नहीं होता।

''नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।''

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को शुभ कर्म का फल सुख, अशुभ कर्म का फल दुःख तथा उपासना का फल आनन्द के रूप में प्राप्त होता है। यही ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था है।

इसी सम्बन्ध में डॉ. आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार की पुस्तक ''उपनिषद् दीपिका'' में मुण्डकोपनिषद् २.२.८ की व्याख्या पठनीय है। ''ब्रह्म का दर्शन हो जाने पर, हृदय की गाँठें खुल जाती हैं, सब संशय मिट जाते हैं, जीवन में जो कर्म किये होते हैं, उनमें से जिनका फल नहीं मिला होता है, वे क्षीण हो जाते हैं अर्थात् फलोन्मुख न होकर

फल प्रदान से रुक जाते हैं। पहिले मुक्ति को लेने देते हैं। आत्मा के मुक्ति से लौटने पर फलोन्मुख होते हैं।''

डॉ. वेदालङ्कार 'क्षीण' शब्द से कर्मों का नष्ट/समाप्त होना न मानकर शिथिल, दुर्बल, निर्बल, असहाय होना मान रहे हैं जबकि कुछ अन्य विद्वान् 'क्षीण' शब्द से कर्मों का नष्ट=नाश होना मानते हैं। ऐसी स्थिति में महर्षि के शब्द ही प्रमाण रूप में मान्य होंगे।

महर्षि के अनुसार पाप-पुण्य की तुल्यता (समानता) पर मनुष्य शरीर प्राप्त होता है। ईश्वर का ज्ञान, बल व क्रिया अनन्त व स्वाभाविक है। पाप-पुण्य की तुल्यता का निर्धारण ईश्वराधीन व्यवस्था है। वेद में समस्त आवश्यक ज्ञान सूक्ष्म रूप में निहित है, अत: वेद के किसी मन्त्र में इसका भी बीज रूप में वर्णन होगा, जो मन्त्रद्रष्टा ऋषि द्वारा ही उद्‌बोधित होना सम्भव है किन्तु यह निश्चित है कि परान्त काल की समाप्ति पर पुनरावर्तन पर मनुष्य का जन्म पाप-पुण्य की तुल्यता पर ही प्राप्त होगा तथा मोक्षावस्था प्राप्त होने से पूर्व शिथिल (क्षीण) हुए कर्मों के आधार पर जाति-आयु-भोग प्राप्त होंगे और जन्म पर्यन्त होते रहेंगे। यो. द. २/१३ के अनुसार मनुष्य जन्म प्राप्त होते हुए भी सब के जाति-आयु समान नहीं होंगे। मनुष्य इतर योनि होते हुए भी पालतु जानवरों के भोग मनुष्य से उच्च होते हैं, क्योंकि कर्मों की विचित्रता से सृष्टि की विविधता होती है। ''**कर्म वैचित्र्यात् सृष्टि वैचित्र्यम्**'' (सां. दर्शन ६/४१) ऐसे ही कर्म-भेद से व्यक्ति-भेद होता है (सां. दर्शन) ''**व्यक्ति भेद: कर्म विशेषात्**'' (सां. द. ३/१०)

अन्त में आर्यजगत् के विद्वानों से विनम्र आग्रह है कि वे उपर्युक्त विषय पर वेदानुकूल व महर्षि की दिशानुसार आर्यजनता का मार्गदर्शन करने की कृपा करेगें। **रुड़की**

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ **पृष्ठ :** २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा **पृष्ठ :** ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर **पृष्ठ :** ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग **पृष्ठ :** २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी **पृष्ठ :** १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

(०१ सितम्बर से ३० सितम्बर)

संस्था - समाचार

वृष्टि यज्ञ- २० जुलाई, २०२० (सोमवार) से प्रारम्भ वृष्टि-यज्ञ की ०१ सितम्बर, २०२० (मङ्गलवार) को पूर्णाहुति दी गई। इस यज्ञ के मुख्य यजमान श्री वासुदेव आर्य एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुमुदिनी आर्या थे। यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य घनश्याम एवं परोपकारिणी सभा के प्रधान डॉ. वेदपाल, मन्त्री श्री कन्हैयालाल आर्य, कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल, पुस्तकाध्यक्ष श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर' इत्यादि भी उपस्थित थे।

यज्ञ एवं प्रवचन- ''वेद की ज्योति जलानी है तो उसमें जलने वाला घी हमारा रक्त होगा, पहले स्वयं को तपाना होगा, जलाना होगा, तब ही हम उस ज्योति के प्रकाश से मार्ग-भटके राहियों को वेद-पथ की ओर अग्रसर कर सकते हैं।'' ये पंक्तियाँ आचार्य श्री श्यामलाल जी के व्याख्यान की हैं। आचार्य जी हम विद्यार्थियों को व्याकरण (अष्टाध्यायी भाष्य आदि) का अध्ययन कराते हैं। इन पंक्तियों से आचार्य जी ने यह स्पष्ट घोषित किया कि समाज में यदि कुछ बड़ा करना है तो परिश्रम भी उतना ही बड़ा होना चाहिये। हमारे शास्त्रों में अध्ययन-अध्यापन को तप कहा गया है, परन्तु यह उपदेश मात्र विद्यार्थियों के लिये ही नहीं अपितु प्रत्येक अध्ययन-अध्यापनरत सज्जन के लिये है। प्रत्येक का अध्ययन तब सार्थक होता है जब वह उससे स्वयं की उन्नति कर पश्चात् समाज की उन्नति में संलग्न हो जाये। हमारा अध्ययन जितना अधिक होगा, उतना ही विस्तृत हमारा कार्यक्षेत्र होगा एवं ऋषि-ऋण को उतारने का सामर्थ्य भी उतना ही प्रबल होगा।

पिछले दिनों 'धर्म' विषय पर भ्राता श्री प्रभाकर जी का व्याख्यान हुआ, जिसकी एक छोटी-सी पंक्ति इस प्रकार थी- ''मनुष्यता ही धर्म है।'' वैसे तो हमारे शास्त्रों में धर्म-अधर्म की चर्चाएँ भरी पड़ी हैं जिन पर भ्राता जी ने विचार रखे तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में प्रतिपादित धर्म विषय पर अपना मुख्य व्याख्यान दिया, जिसकी चर्चा यहाँ की जाय तो परोपकारी के पृष्ठ कम पड़ जायेंगे। अत: यह छोटी-सी पंक्ति जो अपने व्याख्यान के उपसंहार में उन्होंने कही, इसका भावार्थ यही है कि कोई व्यक्ति शास्त्रों के गहरे अर्थों को न जानता हो तो कोई बात नहीं, परन्तु यदि उसमें मनुष्यत्व/मनुष्यपना है तो उसका यही गुण उसे धार्मिक की उपाधि दे देता है। कोई सामान्य व्यक्ति जो शास्त्रों को नहीं जानता, परन्तु सिद्धान्तों का थोड़ा ज्ञान है, उससे कुछ पृष्ठों में मनुष्यता के नियम लिखने को कहा जाय, जो एक देहधारी को वास्तव में मनुष्य बना सकें, मनुष्यपने का सञ्चार कर सकें, ऐसे नियमों को लिखने के लिये कहा जाय तथा उनका ही पालन किया जाय, तो धर्म अलग से कुछ नहीं रह जाता, क्योंकि मनुष्यता ही धर्म है।

इसी प्रकार के कई उपदेश प्रतिदिन प्रात: यज्ञ के उपरान्त होते हैं जिनका लाभ उपस्थित सज्जनों को प्राप्त होता है। साथ ही व्याख्यान के क्रम में सत्यार्थप्रकाश का पाठ भी चलता है, जिसमें सातवें समुल्लास की व्याख्या आचार्य श्री घनश्याम जी द्वारा कई दृष्टान्तों तथा सिद्धान्तों सहित की जाती है। रविवारीय कार्यक्रम में प्रत्येक रविवार को प्रात: विशेष यज्ञ के पश्चात् भजन पश्चात् आचार्यों के उपदेश होते हैं। भजन के क्रम में ब्र. रविकान्त जी ने ''प्रभु के गीत गाने में भला है'' तथा ''वेदों से यह सार ऋषियों ने निकाला है'' गीत गाये। वानप्रस्थी श्री अग्निवेश जी ने ''प्रभु तुम अणु से भी सूक्ष्म हो'' भजन प्रस्तुत किया एवं ब्र. नवनीत जी ने ''संसिद्धा: स्याम वयम्'' संस्कृत गीत को प्रस्तुत किया। प्रात: सायं यज्ञ भी प्रतिदिन निर्बाध रूप से होता है।

गुरुकुल- ऋषि उद्यान में स्थित अनुसन्धान भवन की जीर्णावस्था को ठीक करने का कार्य ऋषि उद्यान में चल रहा है, जिसमें कई श्रमिक लगे हुये हैं। गुरुकुल में व्यवहारभानु, संस्कृत-अनुवाद, न्यायदर्शन, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तथा व्याकरण आदि की कक्षाएँ नियमित चल रही हैं। हर सप्ताह वाग्वर्धिनी सभा भी होती है, जिसमें विद्यार्थी विभिन्न विषयों पर व्याख्या न कर अपने वक्तृत्व कला को उन्नत करने का अभ्यास करते हैं। ये सभी कार्य दानदाताओं के सहयोग तथा सभा के अधिकारियों की नेतृत्व-क्षमता एवं कर्मचारियों की निष्ठा से सतत् प्रगतिशील हैं, अपेक्षा करते हैं कि इसी प्रकार निरन्तर आपका सहयोग बना रहे।

ÃUôÂ·æçUe·è âæ¥ÁôÚU mæUéÂ·æçàÌ ÂéSÌ·ð¢ ÂÚU ÀêÅU

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

शोक समाचार

१. श्री महेश सोनी के बड़े भाई व नगर आर्यसमाज, बीकानेर के पूर्व प्रधान **श्री रामेश्वरलाल आर्य** का ८५ वर्ष की आयु में दिनांक १४ सितम्बर २०२० को आकस्मिक देहावसान हो गया। श्री रामेश्वरलाल जी बचपन से ही सक्रिय कार्यकर्ता रहते हुए प्रधान पद पर रहे। आपके आवास पर चतुर्वेद शतकम् के मन्त्रों से हो रहे यज्ञ और कथा की पूर्णाहुति के साथ श्रद्धाञ्जलि दी गई। **परोपकारी परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।**

२. देहरादून में आर्य विद्वानों में अग्रणीय वयोवृद्ध विद्वान **श्री ईश्वर दयालु आर्य** का दिनांक १७-०९-२०२० को देहावसान हो गया। उनको उदर विषयक संबन्धी सामान्य समस्या उत्पन्न हुई थी जिसकी औषधि भी उनको दी गई थी। ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति व शान्ति प्रदान करें। श्री ईश्वर दयालु आर्य जी का अन्त्येष्टि संस्कार देहरादून में पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न किया गया। **परोपकारी परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।**

३. एम.डी.एच. ग्रुप के चेयरमैन एवं अन्य अनेक संस्थानों को अपना आशीर्वाद प्रदान करने वाले पद्मभूषण महाशय धर्मपाल जी के दामाद **श्री सुभाष शर्मा** का गत १४ सितम्बर २०२० को निधन हो गया। वे ६४ वर्ष के थे। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया।

परोपकारी परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३० सितम्बर २०२० तक)

१. श्री मानक चन्द जैन, छोटी खाटु २. श्री अनुपम आर्य, जयपुर ३. श्री पुनीत कुमार गुरुग्राम ४. श्री हेतु सेतिया, गुरुग्राम ५. सुश्री अविका कालड़ा, गुरुग्राम ६. श्री वीरेन्द्र मेहरा, गुरुग्राम ७. श्री अनिल कुमार बरेजा, गुरुग्राम ८. श्रीमती नीतू कुमार, गुरुग्राम ९. श्री आनन्द प्रकाश वर्मा, गुरुग्राम १०. श्री विजय लाल, गुरुग्राम ११. श्री सुभाष अदलखा, गुरुग्राम १२. श्रीमती मन्जुला शर्मा, अजमेर १४. श्रीमती प्रेमलता शर्मा, अजमेर १५. श्रीमती ईश्वरी देवी, सोनीपत १६. श्री भगवान दास गाँधी, सोनीपत १७. श्री शिवकुमार मदान, नई दिल्ली १८. श्री गौरव गुप्ता, विशाखापट्टनम १९. श्री कृष्ण कुमार आर्य, नई दिल्ली २०. श्रीमती यशोदा रानी सक्सेना, कोटा २१. श्रीमती मृदुला सक्सेना, कोटा २२. श्री योगांश गर्ग, कालांवाली २३. श्री गौरव मिश्रा, श्रीमती चित्रा मिश्रा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३० सितम्बर २०२० तक)

१. श्री मानक चन्द जैन, छोटी खाटु २. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली ३. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट ४. श्रीमती उर्मिला पारीक, अजमेर ५. श्री आर. सत्यनारायण रेड्डी, हैदराबाद ६. श्री आर. आर. विजय, अजमेर ७. श्रीमती कमला देवी, अजमेर ८. श्री सतीश चन्द मलिक, नई दिल्ली ९. श्री अयान अग्रवाल, अजमेर १०. श्रीमती दीपिका हर्षवर्धन, अजमेर ११. श्री देवेन्द्रप्रकाश एवं श्रीमती हेमलता, अजमेर १२. श्री एस. के. कोहली, दिल्ली।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. आर्यसमाज राजाजीपुरम्, लखनऊ २. श्री श्रीकान्त आर्य, बंगलौर ३. श्री आर. सत्यनारायण रेड्डी, हैदराबाद ४. श्री दीनदयाल गुप्ता, कोलकाता ५. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद।

ऋषि मेले के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना

कोरोना (कोविड १९) महामारी के भीषण प्रभावों एवं भारत सरकार के निर्देशों को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा की ओर से ऋषि मेले के सम्बन्ध में यह निर्णय किया गया है कि-

१. महर्षि दयानन्द का बलिदान समारोह अर्थात् ऋषि मेला पूर्व निर्धारित तिथियों २० से २२ नवम्बर २०२० को वर्चुअल रूप में ही मनाया जाएगा।

२. आप सभी आर्यजन सुरक्षित रहें अतः यह कार्यक्रम ऑनलाइन ही प्रसारित किया जाएगा। आप घर पर रहते हुए ही कार्यक्रम का लाभ उठाएँ।

३. ऋषि मेले के ऑनलाइन प्रसारण के लिए सभा द्वारा तैयार की गई रूपरेखा की जानकारी सभा के आधिकारिक फेसबुक पेज 'परोपकारिणी सभा, अजमेर' आदि पर जारी कर दी जायेगी।

४. पुस्तक विक्रेता आदि कृपया स्टॉल बुक करने के लिये धनराशि न भेजें।

५. इस सम्बन्ध में आगामी सूचनाएं पाने के लिए परोपकारिणी सभा के फेसबुक पेज से जुड़े रहें।

सम्पर्क सूत्र- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**